राष्ट्र शब्द समाहित वेदमन्त्रों के
आधार पर

वेदों में राष्ट्र-दर्शन

डॉ॰ शिव आचार्य

९.३

राष्ट्र शब्द समाहित वेदमन्त्रों के
आधार पर

वेदों में राष्ट्र-दर्शन

डॉ. शिव आचार्य

प्रकाशक संस्कृत प्रसारिणी सभा, गमिरि

राष्ट्र शब्द समाहित वेदमन्त्रों के आधार पर

वेदों में राष्ट्र-दर्शन

लेखक :

डॉ. शिव आचार्य

प्रकाशक :

संस्कृत प्रसारिणी सभा

पत्रालयः- गमिरि ७८४१७२

जिला- शोणितपुरम्

असम प्रान्तः

(पुस्तक प्राप्ति हेतु इसी पते पर सम्पर्क करे)

प्रथम प्रकाशन- २००५ प्रतियाँ, (२००५ ई)

मूल्य- ४५.०० रुपये

समर्पण

भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक
भारतीय राष्ट्रियता की संकल्पना के
आधुनिक व्याख्याता
युगपुरूष विद्वान

मा.दत्तोपन्तजी ठेंगड़ी की

पावन स्मृति में
सादर
समर्पित।

लेखक

प्रस्तावना

अपनी अपनी जडों की खोज के विषय में वर्तमान जगत में भिन्न भिन्न स्तर पर चलने वाले प्रयास स्पष्टतःदिखाई दे रहे हैं। अमेरिका के सुविख्यात उपन्यासकार श्री अलेक्स हेयली ने दीर्घकालीन गहरे अध्ययन के फलस्वरुप अमेरिकन ब्लाकों- कृष्णजनों के बारे में एक विश्वप्रिय उपन्यास लिखा हैं जिसका स्वयं स्पष्ट नाम है 'रूट्स्' अर्थात् जड़ें। उसी प्रकार भारत के दक्षिण स्थित केरल में बहुसंख्या में अधिवसित तमिलनाडु क्रे ब्राह्मणों के जात के विषय में समाजशास्त्रीय तथ्यों पर आधारित किन्तु काल्पनिक उपन्यास लिखा गया है जिसका नाम है 'वेरुकल' अर्थात् जड़ें। स्वतन्त्रोत्तर भारत के प्रारम्भकालीन 'ऐ. ए. एस' काड़र के सफल सक्षम प्रशासक तथा सिद्धहस्त साहित्यकार श्री मलयाटूर रामकृष्णन् इसके ग्रन्थकार हैं जो उसी जात के थे। इसी शृङ्खला की अर्वाचीनतम कड़ी के नाते उल्लेखनीय पुस्तक है प्राः सामुवेल हंटिंग की 'हू आर् वी'- 'हम कौन हैं'। उपर्युक्त तीन ग्रन्थ तीन स्तर के हैं। श्री हेयली का विषय अफ्रीका महाद्वीप से अपहृत अथवा क्रीतसमूह है जबकि श्री रामकृष्णन का विषय अन्य प्रान्तीय भाग्यान्वेषी अय्यर जात है। प्राध्यापक हंटिंग का विषय है अमेरिका का राष्ट्रीय समूह। इन तीन स्तरों के प्रयासों में एक समान दिशा तो दिखाई ही पड़ती है कि 'अपनी अपनी जड़ें' ही इनके खोज का विषय है। यद्यपि वर्तुल की परिधि अलग अलग है परन्तु केन्द्र तो एक ही है।

भारत में भी उन्नीसवीं सदी से राष्ट्र और राष्ट्रीयता के स्तर पर 'हम कौन हैं' यह प्रश्न उभर आया। यहाँ के तत्कालीन चिन्तकों, मनीषियों व समाज नेताओं ने अपने अपने प्रकाश एवं पृष्ठभूमि के अनुसार उत्तर खोजने के प्रयास भी किये। उनके विविध अनुमान व परिभाषाओं को हम सामान्यतः तीन विभागों में विभाजित कर सकते है। वह हैं (१) नवराष्ट्रवादी राष्ट्रीयता (२) बहुराष्ट्रवादी राष्ट्रीयता एवं (३) चिरराष्ट्रवादी राष्ट्रीयता। नवराष्ट्रवादियों का कहना था कि भारत कदापि एक राष्ट्र नही था। स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर एक नवीन राष्ट्र के स्वरूप में उसका उदय विश्वपटल पर हुआ। उस खेमे का आधार और प्रभाव युरोप के इतिहास का घटनाचक्र था। युरोप मे राष्ट्रीयता थी ही नहीं।

अठारहवीं सदी से विशेषतः मजहबी तानाशाह पोप महाशय के विरोध में, उसी प्रकार तत्पश्चात् नेपोलियन बोनापार्ट की भौंगोलिक तानाशाही के विरोध में अपनी अपनी अस्मिता एवं पृथक विशेषता की सुरक्षा व प्रतिष्ठापना हेतु युरोप के प्रत्येक समाज विशेष ने संघर्ष और समर छेड दिये और उनसे राष्ट्रीयता उभर आयी। उसी समय युरोपीय साहित्य मे 'नेशन, 'नेशनेलिझम', 'नेशनेलिटि', आदि शब्द उभर आये। अपने नवराष्ट्रवादी बन्धुओं की चिन्तनदिशा भी यह थी कि भारत की राष्ट्रीयता भी युरोपीय घटनाचक्र की पुनरावृत्ति है और उनका अनुमान यह निकला कि भारत राष्ट्र बन रहा देश है- 'इण्डिया ईझ ए नेशन इन दि मेकिंग'।

बहुराष्ट्रवादियों का भी कहना था कि भारत कदापि एक राष्ट्र नहीं था। किन्तु आगे चलकर वे मानते हैं कि आज भी भारत एक राष्ट्र नहीं। इस अर्थ में उनको अराष्ट्रवादी भी कहा जा सकता है। उनकी दृष्टि मे भारत एक से अधिक लगभग सत्रह राष्ट्रों का समूह है। केरल से लेकर अरुणाचल तक प्रत्येक प्रदेश और जनसमूह एक भिन्न राष्ट्र है और इनका समावेश बहुराष्ट्रीय राज्य है भारत। मुख्यतः ये लोग साम्यवादी हैं और उनके मस्तिष्क में युरोप के घटनाचक्र के अतिरिक्त साम्यवादी रूस का कालबाह्य घटनाचक्र भी घूमता है। साम्यवादी रूस 'सोवियत रिपब्लिक्स' राष्ट्रों का 'सोश्यलिस्ट यूनियन'- यू.एस्.एस्.आर् था। उसी राह पर भारत भी इण्डियन् रिपब्लिक्स का यूनियन है।

ध्यान देने की बात है कि इस विचारदिशा के पीछे अथवा इसके साथ अपनी रोटी सेकने हेतु नवरूप घारण करनेवाले साम्राज्यवादी और ईसाराज्य के स्वप्नद्रष्टा ईसाई मिशनरी भी हैं।

उपर्युक्त दोनों विचारों में भारत की प्राचीनता, चिर् पुरातन संस्कृति, उस संस्कृति की उत्कृष्टता, उसका लोककल्याणकारी वैश्विक लक्ष्य, एक शब्द में भारत की अस्मिता का नाम निशान तक अदृश्य है। दोनों की दृष्टि से भारत जड़हीन जमीन का टुकड़ा है। इस परिप्रेक्ष्य में तीसरी विचारदिशा 'चिरराष्ट्रवादी' का महत्त्व विशेष चिन्तनीय है।

चिरराष्ट्रवादी विचारकगण का कहना है कि भारत प्राचीन काल से एक राष्ट्र था। उसके दीर्घकालीन इतिहास में अनुभूत अनेक उत्थान-पतनों के बावजूद यहाँ

का राष्ट्रजीवन अखण्ड चलता रहा। भारत की यह चिर पुरातन राष्ट्रीयता युरोप के अर्वाचीन नेशनेलिझम् से बिलकुल भिन्न है। वह तो पूर्णतः शान्तिजन्य है संघर्षजन्य नहीं। वह है निर्वैरी ऋषियों के तप का फल, न तो राजाभिलाषी नेताओं की जीत का परिणाम। अर्थात् भारत की राष्ट्रीयता क्रियात्मक है प्रतिक्रियात्मक नहीं। विकासात्मक है विरोधात्मक नहीं। भारत की विशेष जड़ें हैं।

इस दृष्टि से युरोप में व्युत्पन्न 'नेशन' और भारत में व्युत्पन्न 'राष्ट्र' को समानार्थी समझना गलत होगा जैसे युरोप के 'चर्च फादर' और भारत के 'धर्मगुरु'। अर्थात् उत्पत्ति, व्युत्पत्ति की दृष्टि से दोनों शब्दों में स्पष्ट अन्तर है। किन्तु पश्चिमोन्मुखी बुद्धिजीवियों की बुनियादी भूल यहीं से प्रारम्भ होती है। वे किलोमीटर के मापदण्ड से मील को नापते हैं। आम के पेड़ की जड़ों की खोज अमरूद के पेड़ के नीचे जाकर करते हैं।

डॉ. शिव आचार्य द्वारा लिखित 'वेदों में राष्ट्रदर्शन' इस परिप्रेक्ष्य में मूलभूत अ-परावलम्बी चिन्तन का निचोड़ है। भारत के राष्ट्रत्व की खोज वे पश्चिमी वैशाखी पर अवलम्बित न हो कर अपने ही पैरों पर खड़े होकर कर रहे हैं। उसके कारण सभी आधुनिक सुशिक्षित बन्धुजनों को अपने इस प्राचीन राष्ट्र के साहित्य सागर से ही राष्ट्र सम्बन्धित मौलिक अनन्य वैचारिक रत्न प्राप्त होंगे। संकोच विना कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ के द्वारा डॉ. आचार्य ने आज चलनेवाले अस्मिता की खोजों के प्रयासों में एक महत्त्वपूर्ण योगदान किया है और प्रबुद्धजन उनकी ओर ऋणी होंगे। अ-पूर्वग्राही सही सत्यान्वेषी निःसन्देह लाभान्वित होंगे और इससे भी आगे जाने को प्रेरित होंगे। कठोपनिषद् के शब्दों का उदाहरण लेकर मैं कहूँगा कि वे सारे राष्ट्रत्व के अमृत को प्राप्त करने हेतु 'आवृत्तचक्षु' हो जायेंगे- **'आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्'**।

डॉ. शिव आचार्यजी को मेरी शुभकामनायें। उनके द्वारा इसी तरह की कृतियों की रचना और भी हों, इसी प्रार्थना के साथ सहृदय शुभाकांसी-

रंगा हरि

डा. हेडगेवार भवन
नागपुर- ४४००३२

भूमिका

वेद शाश्वत ज्ञान का दूसरा नाम है। सृष्टि के प्रथम मानव-समूह में से कुछ पूर्व सृष्टि के सत् कार्यों के कारण योगी बने। एक अनिर्वचनीय शक्ति ने उन पुरूषों में ऋतम्भरा प्रज्ञा का स्फुरण किया एवं उसी प्रज्ञा के माध्यम से प्रभु ने वेदों को प्रकट किया। वेद ईश्वरीय हैं इसमें कोई सन्देह नहीं। उसके कुछ प्रमाण नीचे दिए गए हैं।

(१) जितने भी नए नए आविष्कार होते जा रहे हैं,वे सभी विषय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वेदों में पाए जाते हैं। विमान,गणित,एवं अन्तरजाल (Inter-net) जैसे विषय को भी वेदों में पाया जाना ईश्वरीय ज्ञान का द्योतक नहीं तो और क्या है?

(२) आज के अन्तरजाल (Inter-net) के युग में भी वेदों के नकली मन्त्र बनाने की क्षमता किसी भी व्यक्ति में नहीं है। किसी ने बना भी लिया तो भी अष्ट विकृतियों की कसौटी में कसने पर उसके नकलीपन का पता चलता है।

(३) वैदिक ऋचाओं के छन्दों,अलङ्कारों,काव्य-सौन्दर्य,उनके शब्दविन्यास एवं स्वरविन्यासों को मानवमस्तिष्क से उपर पाए गए हैं।

(४) अक्षर संख्या,ज्ञान,काव्य-कला सभी विषयों पर विचार करने पर मानवमस्तिष्क की परिधि छोटी होकर आती हुई दिखाई देती है। अतःवेदों की भाषा व मन्त्रों की रचना मानव मस्तिष्क की उपज नहीं है।

हमारे कथन को पुष्ट करते हुए ऋग्वेद (१०/७१/३) भी स्पष्ट घोषणा करता हुआ पाया जाता है-

''यज्ञेन वाचःपदवीयमायन्
तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।''

अर्थात् मेधावियों ने यज्ञ के द्वारा वाणी के पदों को खोजा एवं ऋषियों के अन्तःकरण में स्थित वाणी को प्राप्त किया। बृहदारण्यक उपनिषद(४/५/११) कहता है-

"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो
यजुर्वेदःसामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः"

अर्थात् ऋक्, यजुः,साम एवं अथर्व ये चारों वेद उस महान परमेश्वर के श्वास से प्रकट हुए हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद (६/१८) के अनुसार-

" यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै "

अर्थात् जिसने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा को जन्म दिया एवं जिसने वेदों को प्रकट किया.......................................आदि आदि।

वेद ज्ञानभण्डार होने के कारण इसमें कर्म,भक्ति,ज्ञान और मोक्ष जैसे अनेकों विषयों के साथ-साथ भौतिक विज्ञान के अनेकों विषय अर्थशास्त्र, राजनीति,गणित एवं मनोविज्ञान जैसे विषयों पर भी चर्चा की हुई पाई जाती है। इस दृष्टि से विचार कर हमने 'Nation and Nationlalism in the Vedic Literature: A Study' नामक शोध ग्रन्थ प्रस्तुत किया और गुवाहाटी विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधी मिली। राष्ट्रियता के विषय पर वेदों में पर्याप्त चर्चा हुई है। अतः हम'राष्ट्र' शब्द समाहित वेदमन्त्रों को शब्दशःव्याख्या करते हुए राष्ट्रियता के वैदिक दृष्टिकोण का अध्ययन करना चाहते थे,परन्तु उस प्रकार की व्याख्या शोधग्रन्थ में सम्भव नहीं हुआ क्यों कि Research methodology इसमें आड़े आए। पी.एच.डी होने के बाद हमने यह कार्य हाथ में लिया और इस कार्य में हमने सायणाचार्य,उवट,महीधर,पण्डित सातवलेकर, ज्वालाप्रसाद मिश्र, दयानन्द सरस्वती व ग्रीफिथ के भाष्य पढ़े एवं उनके उद्धरण भी दिए।

इसप्रकार का ग्रन्थ लिखने की इच्छा जागृत होने का एक विशेष कारण है। वह यह कि- मेकडोनल,म्यूर,मेक्समूलर,मोनियर और मेकाले इन पाँच मकारों ने भारतीय वाङ्मय को नीचा दिखाने हेतु वेदादि शास्त्रों के अर्थों की ही न केवल नारायण वलि कर दी अपितु अनेकों पत्रों में अपने मित्रों को खुलासा करते हुए लिखा कि वे भारत की विचारधारा एवं जीवनदर्शन को

नीचा दिखाना चाहते थे। दुर्भावना से ग्रस्त होकर मेक्समूलर ने तो यहाँ तक कहा- **" Indians are a nation of philosophers and Indian intellect is lacking in political and material Speculation and that the Indians never knew the feeling of nationlity."**

अर्थात्' भारत दार्शनिकों का देश है और भारतीय मनीषिया

में राजनैतिक एवं भौतिक चिन्तन का अभाव है तथा भारतीयों में कभी भी राष्ट्रियता की भावना नहीं रही।'

ऐसे सिद्धान्तों मे पले, पाश्चात्य षड़यन्त्रकारियों की थोथी व्याख्याओं को पढ़कर 'शोध' करनेवाले, मरुभूमि की रेत में पदचिह्नों को ढूँढ़ने के समान 'वेद रचना' के काल को ढूँढ़ने वाले, अपनी संस्कृति के प्रति श्रद्धा व भक्ति भाव से शून्य होकर उदासीन रहनेवाले एवं हीन दृष्टि से देखनेवाले और वैदिक वाङ्मय की भाषा को आयातीत समझकर इण्डो-यूरोपीयन भाषासमूह की पुत्री समझने वाले वर्तमान समय के 'विद्वानों' की सोच को देखकर आश्चर्य होता है। हमारे देश के इन विद्या-धुरन्धरों की आँखों की पट्टी को खोलने की आवश्यकता है। इस सनातन राष्ट्र में 'राष्ट्रियता की भावना ही नहीं रही' कहना उन्मत्त प्रलाप नहीं तो और क्या है? इन प्रलापों के अलावा इन 'धुरन्धरों' ने वेदनिर्माण के कालखण्ड को संकुचित करने की धृष्टता भी की। इसका एक मूलभूत कारण है। बाइबल के अनुसार आदम का स्वर्ग से उतरने का समय ई.पू.५४७२ सन रहा। याने उसके पहले विश्व में मानव ही नहीं था- ऐसे बाइबिल गत चिन्तनों (Biblical thouhgt) को मस्तिष्क में लेकर मानव इतिहास की धारा को ही संकुचित करने के प्रयास किए गए। इसी प्रयास में वेदों के कालनिर्णय की उलजलूल व कोरी कल्पना की गई।

मेक्समूलर व विण्टरनित्स वैसे ही मतान्ध ईसाई थे।स्पीगल नामके एक शोधकर्ता ने लिखा कि-यहुदियों में उन्नति का विचार पारसियों से आया है। इस पर मेक्समूलर के असहिष्णु ईसाई ह्रदय में कोलाहल मचा और चिल्ला उठा-

"A writer like Spiegel should know that he can expect no mercy, nay, he should wish for no mercy,but invite the highest artillery against the floating battery which he has launched into the troubled waters of Biblical criticism."

अर्थात् डॉ.स्पीगल जैसे लेखक को दया की आशा और इच्छा ही नहीं रखनी चाहिए, क्यों कि बाइबल के विरोधरूपी सागर में उतारे हुए उसके जलपोत पर भारी गोलाबारी होगी। ऐसी मतान्धता ने ही उसे कहलवाया-

"Indians never knew the feeling of nationality"

दूसरी और कुछ दूधमूँहे शिशुराष्ट्र के नौसिखिए गवेषक चिल्ला उठे-

१. **" Nationalism is the child of French Revolution"**

G.P.Gooch.

"याने राष्ट्रियता फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति की सन्तान है"

२. **" Nationalism is modern, very modern."**

Curlton J.H.Hays.

याने 'राष्ट्रियता नई ही नहीं बल्कि बिल्कुल नई है'

दुर्भाग्य से माने गए ऐसे 'विद्वानों' के अज्ञानान्धकार में डूबे हुए विश्लेषण, स्वीकृत 'विद्वान' ईसाईयों के षड़यन्त्र, भारतीय संस्कृति को भस्मसात करने की योजना से बनाए गए मैकाले फैक्टरी के आत्मचेतनाशून्य मिट्टी के पुतले जैसे तथाकथित विद्वानों की खोज व सद्योजात राष्ट्र-तत्त्व पर किए गए खोजों को एकत्रित कर उन्हीं के चश्मों से भारत राष्ट्र के अस्तित्व को ढूँढते समय कैसी विचित्र स्थिति रही होगी-यह सोचते समय उपनिषद की कुछ पंक्तियाँ बरबस याद आ गई-

अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमानाः । स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढ़ाः । अन्धेनैव नीयमानाः यथान्धाः।।

अर्थात् अविद्या के अन्दर रहे हुए एवं अपने को धीर व पण्डित माननेवाले मूर्ख, अन्धे के द्वारा ले जाते हुए दूसरे अन्धे के तरह लड़खड़ाते हुए चक्कर

लगाते रहते हैं।

भारत के राष्ट्रजीवन का साक्षात्कार करने की जिनकी दिव्य दृष्टि ही न रही हो, जो षड़यन्त्र के हलाहल को अपने ह्रदय में लिए कुछ भी उगलते हों,जो तोते के तरह सिखाए गए वाक्यों को ही रटते जाते हों एवं अपने को बड़ा विद्वान होने का दम्भ भरते हों, ऐसे दुर्योधन भला परमेश्वर का विराट रूप कैसे देख पाते? उसके लिए तो अर्जुन, विदुर भीष्म तथा संजय बनना पड़ता है।

इस शाश्वत राष्ट्र में, न केवल वेदों मे अपितु पुराणों, महाकाव्यों, नाटकों, अर्थशास्त्रों व स्मृतिशास्त्रों में भी राष्ट्र एवं राष्ट्रियता के अपार तथ्य भरे पड़े हैं केवल ह्रदय में श्रद्धा और भक्ति भाव से खोज करने की आवश्यकता है।

अब इस सनातन राष्ट्र की सन्तान जान ले कि जगज्जननी भारत माँ के आँगन में मडराने वाले विषैले सर्पों की अब शीघ्र ही अन्त्येष्टि होगी क्यों कि उसकी गोद में अब जनमेजयों का जन्म हो चुका है।

लेखक-

कृतज्ञता

प्रस्तुत पुस्तक की रचना का एक कारण तो हमने भूमिका में लिखा है। फिर भी श्री कृष्ण मोतलगजी एवं श्री विनायक जी कानेटकर जैसे संघ प्रचारकों के उपदेश भी प्रेरणास्रोत बने। उन्हें मेरी ओर से सादर नमन। द्वितीयतः इस कार्य में मेरे पी.एच.डी. के निर्देशक डॉ. थानेश्वर जी शर्मा से मन्त्रों की व्याख्या हेतु पर्याप्त सामग्री मिली एवं श्री तुलसीशरण उपाध्याय ने प्रूफ देखकर आवश्यकीय संशोधन हेतु जो परामर्श दिए उन कारणों से उन्हें भी आभार व्यक्त करता हूँ। संस्कृत प्रसारिणी सभा, गमिरि ने प्रकाशन के लिए व्यय का बीड़ा उठाया, और उसने इसके प्रकाशन का दायित्व अपने कन्धे पर न लिया होता तो यह सामग्री पुस्तक के रूप में पाठकों के समक्ष नही पहुँचाया जा सकता था उसके लिए सभा के सचिव श्री विनोद दवाड़ी सहित सभी सदस्यों को मैं श्रद्धा निवेदन करता हूँ।

अपने बहुमूल्य विचारों से श्री रंगा हरि जी ने जो आशीर्वचन स्वरूप स्फुर्तिप्रद प्रस्तावना से कृतकृत्य किया उसके लिए मैं आपका चिर ऋणी रहूँगा। अपने विद्यालय के शिक्षकों ने भी इस कार्य हेतु सहयोग दिया है, इस अवसर पर उन्हें भी धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ। लिखाई-पढ़ाई के लिए पर्याप्त समय देने की सुविधा प्रदान करने वाली अपनी सहधर्मिणी गीता को कैसे भूल सकता हूँ ?

अन्त में जिन बन्धुओं का इस कार्य के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें भी मैं सादर नमन करता हूँ।

लेखक

प्रकाशक की लेखनी से

हर्षस्य विषयःयत् संस्कृतप्रसारिणीसभा, गमिरि एतत् पुस्तकं द्वितीयपुष्पत्वेन प्रकाशितवती। इतःपूर्वं तुलसीशरण-उपाध्याय-महोदयस्य गीतमालिका पुस्तकं प्रकाशितम्। सम्प्रति डॉ. शिव आचार्य महोदयस्य 'वेदों में राष्ट्र दर्शन' इति नामधेयं बौद्धिकतथ्यैःसमृद्धं पुस्तकमेतत् प्रकाशितम्। विभिन्नासु भाषासु लिखताम् आचार्यवर्याणाम् बहुषु पुस्तकेषु एतत् पुस्तकं महत्त्वपूर्णं स्थानं लभते।

वयम् आशास्महे यत् पुस्तकमेतत् प्रबुद्धवर्गस्य कृते महते लाभाय भवति। आचार्यवर्याणाम् अन्यासाम् अपि एतादृशीनां कृतीनां प्रकाशनार्थं वयं सक्षमाःभवेम इति भगवते अस्माकं निवेदनम्।

विनोद दवाड़ी

सचिवः

संस्कृत प्रसारिणी सभा

पत्रालयः- गमिरि ७८४१७२

जिला- शोणितपुरम्

असम प्रान्तः

विषय सूची

राष्ट्रोत्पत्ति का सिद्धान्त

राष्ट्र एवं राष्ट्रियता के विषय पर चर्चा करने से पहले हमें यह समझना होगा कि हमें पाश्चात्यों के द्वारा दिए गए Nation और Nationalism के चिन्तनों के घने जंगल से बाहर निकलना होगा क्यों कि वे बेचारे आजतक भी अस्पष्ट भँवर में फँसकर उन शब्दों की व्याख्या ही नहीं कर पाए। H.L.Featherstone अपने A Century of Nationalism में यहाँ तक कहता है, "Nationalism is not capable of Scientific definition" Nationalism और Nation विषय पर चर्चा करनेवाले कुछ प्रमुख पाश्चात्य पण्डित ये हैं- Israel Zangwile, Florian Znanicki, G.P.Gooch, J.H.Hays, Hans Kohn,John Oaksmith, W.B.Pillsbury, Robert Michels, Arnold J.Toynbee, Max Weber आदि। ये विद्वान तो Nation की परिभाषा में एकमत नहीं हो पाए परन्तु हमें तो तब आश्चर्य हुआ जब पता चला कि पहले का League of Nations और वर्तमान समयका United Nations Organisation भी Nation और Nationalism को आजतक परिभाषित नहीं कर सके। इसलिए हमें उन शब्दजालों पर उलझना अनुचित लगता है।

हमने तो सृष्टि के उषःकाल में ही राष्ट्रतत्त्व का साक्षात्कार किया, प्रतिष्ठापित किया और इस आर्यावर्त में राष्ट्र को बसाकर विश्व के सामने भव्य उदाहरण भी प्रस्तुत किया। हमने वेद,उपनिषद,ब्राह्मणग्रन्थ,सूत्रग्रन्थ,उपवेद आदि विशाल वैदिक वाङ्मय के साथ ही इतिहास,पुराण,महाकाव्य आदि भारतीय ग्रन्थों में राष्ट्रतत्त्व को भरपूर मात्रा में पाया, इस ग्रन्थमें वेदों के संहिता ग्रन्थों को ही आधार माना और उन सभी मन्त्रों का संग्रह किया जिन मन्त्रों में 'राष्ट्र' शब्द समाहित है। उन्हीं मन्त्रों को विषयानुसार विभाजन करते हुए वेदों में प्रस्तुत राष्ट्र एवं राष्ट्रियता की अवधारणा को व्यक्त किया है। वेदों

के इन सभी मन्त्रों में हमने 'राष्ट्र' को विशुद्ध भू-सांस्कृतिक तत्त्व के रूप में पाया, कहीं भी इसे राजनैतिक दृष्टि से शासन की इकाई की दृष्टि से निर्मित भूखण्ड के रूप में नहीं पाया। इसी दृष्टि से राष्ट्रोत्पत्ति के सिद्धान्त को दर्शाता हुआ इस मन्त्र को यहाँ प्रस्तुत किया गया है-

> *१. भद्रमिच्छन्त ऋषयःस्वर्विदस्तपो*
> *दीक्षामुपनिषेदुरग्रे*
> *ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातम्*
> *तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु। अथर्व. १९/४१/१*

अन्वयार्थ- भद्रमिच्छन्त स्वर्विदः ऋषयः अग्रे दीक्षां तपः उपनिषेदुः (कल्याण की कामना वाले,परलोक को भी जाननेवाले ऋषियों ने पहले दीक्षापूर्वक तप किया।) ततो राष्ट्रं बलम् ओजश्च जातम् (उससे राष्ट्र, बल और ओज की उत्पत्ति हुई) तदस्मै देवाः उपसम् नमन्तु (इसीलिए उसे देवगण भी समीप से नमन करें)

भावार्थ- प्रस्तुत मन्त्र में राष्ट्रोत्पत्ति का इतिहास व सिद्धान्त निहित है।

(१) पहले याने सृष्टि के तुरन्त बाद मनीषियों ने दीक्षापूर्वक तपस्या प्रारम्भ किया। यहाँ तपस्या का तात्पर्य अनुसन्धान से है।

(२) उनके तपस्या का स्वरूप देखिए-

> *२. यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीत्*
> *यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः*
> *यस्यां हृदये परमो व्योमन्त्*
> *सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः*
> *सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे।। अथर्व.- १२/१/८*

अर्थ- या (जो भूमि) अग्रे अर्णवे सलिलम् अधि आसीत् (पहले समुद्र में जल के भीतर थी) यस्याः पृथिव्याः हृदयम् अमृतम् इव सत्येन आवृतम् (जिस भूमिका अन्तर्भाग अमर स्थान के सदृश सत्य से व्याप्त है) परमे व्योमन् (और महत् आकाश में स्थित है) मायाभिः मनीषिणः याम् अन्वचरन् (कुशलता से मनीषि गण- जिसकी सेवा करते आए हैं) सा नः भूमिः उत्तमे राष्ट्रे त्विषिं बलं दधातु (वह हमारी भूमि उत्तम राष्ट्र में तेज और शौर्य स्थापित करे)

भावार्थ- वैदिक राष्ट्रगीत के अन्दर का यह मन्त्र कई तात्पर्यों को दर्शाता हुआ राष्ट्रोत्पत्ति के इतिहास को स्पष्ट करता है।

(क) यह भूमि पहले समुद्र के अन्दर थी। इस मन्वन्तर के प्रारम्भ का इतिहास बताते हुए महाभारत लिखता है-

''तस्मिन् हिमवतः शृङ्गे नावं बध्नीतमाचिरम्''

हिमालय के शृङ्ग में नाव बाँधने का यह इतिहास ग्यारह करोड़ वर्ष पूर्व का है। इसके पहले भी कई मन्वन्तर बीते। प्रत्येक मन्वन्तर के अन्त में प्रलय एवं कल्प के अन्त में महाप्रलय होता है। अतः जब वर्तमान का श्वेत- वाराह कल्प प्रारम्भ हुआ तब तो समूचा विश्व ही जलमग्न था। ग्यारह करोड़ वर्ष पूर्व हिमालय को सागर के अन्दर होने का तथ्य आज के भूगर्भशास्त्री भी दे चुके हैं।

(ख) भूमि के निकलने पर परमेश्वर की पहली सृष्टि (अमैथुनी सृष्टि) में उत्पन्न मनीषियों ने कुशलता से निरीक्षण करते हुए इसकी परिक्रमा की।

(ग) प्राचीन ऋषियों ने भारत को विश्व का केन्द्र माना है।''पृथिव्याः मानदण्डः'' जैसे पदों से कवियों ने इसके गीत गाए। यह भाग ही स्वर्गतुल्य एवं सत्य से व्याप्त है।

(घ) ऋषियों का कहना है कि -यही हमारी भूमि है। यह भूमि महर्षियों की साधनास्थली, ब्रह्मर्षियों की तपोभूमि और ईश्वर की क्रीड़ाभूमि होने के कारण इस भूमि में तेज और बल का होना स्वाभाविक ही है

(ङ) ऋषियों ने राष्ट्रनिर्माण हेतु इतिहास से उस भूखण्ड को जोड़ा और राष्ट्र को उत्तम बनाया। इस प्रकार राष्ट्र में तेज और बल प्राप्ति हेतु भूदेवी से याचना की गई है।

(३) ''यह कंकड़ पत्थर रेत नहीं। यह तो माता है, माता है, माता है'' मानों इसी तरह ऋषियों ने अपनी भूमि को मातृत्व प्रदान किया ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'' (अथर्व. १२/१)। फिर कल्याण की कामना करने वाले राष्ट्र इतिहास के निर्माताओं में ऋतम्भरा प्रज्ञा के धनियों की स्मृति निरन्तर रखने की इच्छा जगने लगी।

(४) इस तरह लोगों में उस राष्ट्र के साथ तादात्म्य होने की भावना

विकसित हुई-

३.	पृष्ठीर्मे राष्ट्रम् उदरमंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी। उरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः।। यजु. २०/८

अर्थ- मे **पृष्ठीः राष्ट्रम्** (मेरा पृष्ठभाग अर्थात् मेरुदण्ड ही मेरा राष्ट्र है)। **उदरम्** (पेट) **अंसौ** (दो कन्धे) **ग्रीवा** (कण्ठ) **श्रोणी** (कटि प्रदेश) **उरू** (जांध) **अरत्नी** (भुजाओं का मध्य भाग) **जानुनी** (घुटने) **अंगानि** (अन्य अंग) **सर्वतः** (सब और से) **विशः** (यहाँ की जनता है)

भावार्थ- राष्ट्र जीवन में जनसमूह की महत्ता इस मन्त्र से ज्ञात होती है। राष्ट्र में स्थित जनसमूह भीड़ नहीं हुआ करता। एक मनुष्य के सभी अंगों के तरह अनेक धर्म (जीवनादर्शों) एवं भाषाओं के रहने पर भी एक ही घर की भाँति रहना राष्ट्र जन की विशेषता है।

''जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसम्
नाना धर्माणां पृथिवी यथौकसम्'' अथर्व. १२/१/४५

जिस तरह पेट, कन्धे, जाँघ, भुजाएँ, घुटने और अन्य अंग होने पर भी वे सब मिलकर 'मनुष्य' के लिए ही कार्य करते हैं उसी तरह अनेक वृत्तियों वाले लोगों के रहने पर भी राष्ट्र एक सुसंगठित परिवार बन जाता है **'यथौकसम्'**।

द्वितीयतः यहाँ वेदान्त का अद्वैत तत्व भी उभर कर सामने आया है। परन्तु वह आत्मा- परमात्मा के अद्वैत का नहीं, व्यक्ति एवं राष्ट्र के अद्वैत का है। **''अहं ब्रह्मास्मि'' ''सोऽहं''** तथा **''तत्त्वमसि''** की स्थिति में साधक सभी स्थावर व जंगमों में परमात्मस्वरूप अनुभव करता है। इसी तरह यहाँ एक व्यक्ति राष्ट्र से तादात्म्य बिठाकर मानों कहता है "अहं राष्ट्रमस्मि", ''तदहम्'' एवं ''तत्त्वमसि''। अर्थात् 'मैं ही राष्ट्र हूँ' 'वही मैं हूँ' एवं 'वही तुम हो' आदि। इस तरह उस अवस्था में पहुँचा हुआ एक राष्ट्रभक्त अपने सभी कार्यों को राष्ट्रिय दृष्टि से विचारता हुआ करता जाता है। हम उस स्थिति को ''राष्ट्राद्वैत'' कहेंगे। देखिए एक निष्काम शिवभक्त कैसे अपने सभी कार्यों को शिव आराधना का स्वरूप मानता है-

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिः स्थितिः
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरः
यद् यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्

एक राष्ट्रभक्त के सांसारिक कार्यों की मालिका ऐसी ही होनी चाहिए। इसी विषय को आगे बढ़ाता हुआ यह मन्त्र देखिए-

४. प्रतिक्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रतितिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे।। यजु. २०/१०

अर्थ- (मैं) क्षत्रे (क्षत्रियों में), राष्ट्रे (राष्ट्र में), अश्वेषु (धोड़ों में) गोषु (गायों में), अंगेषु (शरीर के अङ्गप्रत्यङ्गों में) आत्मनि (आत्मा में), प्राणेषु (प्राणो में), पुष्टे (ऐश्वर्य में), द्यावा-पृथिव्योः (द्युलोक और पृथिवी में) यज्ञे (और यज्ञ में) प्रतितिष्ठामि (निवास करता हूँ।)

भावार्थ- एक राष्ट्रसाधक राष्ट्र में स्थित सभी प्राणियों को आत्मरूप मानता है। वह अपने अंग प्रत्यंगों में जिस तरह व्याप्त है उसी तरह राष्ट्र में भी व्याप्त है। राष्ट्र के प्राणियों में व्याप्त होता हुआ वह उसके ऐश्वर्य से भी तादात्म्य रखता है। राष्ट्र के दुःख-सुख, जय-पराजय, उत्थान-पतन एवं समृद्धि- विपत्ति को अपनी ही स्थिति मानता है। यह भावनात्मक चिन्तन है। योग-क्षेम को वहन करता हुआ भारतीय अन्तर्मन अन्तश्चेतना की गहराई के तह तक पहुँचा एवं सर्वत्र अपने को तथा अपने में सभी को देखने की दृष्टि लेकर निकला। इसीका परिणाम है कि वह पुरखों की कृति को, भूमि की मातृत्व सत्ता को, यहाँ के जनमानस एवं भूखण्ड को अपने में व्याप्त एवं अपने को उनमें व्याप्त मानकर राष्ट्र के साथ ही तादात्म्य बना बैठा। एक राष्ट्रभक्त की ऐसी ही दृष्टि रहती है। इन विचारों से जब जब राष्ट्र में प्लावन लाया गया तब-तब इस देश में स्वर्णयुगों के इतिहास बने, तत्त्वचिन्तनों से लेकर वैदिक श्रृङ्खला पर आधारित वैज्ञानिक विचार उमड़ उठे, कितने ही आविष्कार हुए एवं यहाँ से हमारे पूर्वज विश्व को ही सभ्य करने का बीड़ा उठाकर विश्व के कोने कोने में फैले और उन्होंने ही विश्वभर में महान मानवसंस्कृति के दृष्टिकोण का परिचय कराया।

(५) इन तत्त्वों के साथ-साथ उसके ओज और बल भी प्रकट हुए ''बलम् ओजश्च जातम्''। ओज का तात्पर्य उसका आत्मिक तेज याने संस्कृति रहा। बल याने शरीरिक शक्ति अर्थात् संस्कृति निष्ठ सभ्यता का भी प्रादुर्भाव हुआ।
(६) राष्ट्र को इतना ही महत्व दिया गया है कि देवताओं को भी उसे नमन करने हेतु ऋषियों ने उपदेश किया।

इस प्रकार ऋषियों ने तपस्या के जरिए राष्ट्र का आविष्कार किया एवं हमें ऋषि ऋण लगा गए। उस ऋण को चुकाना हो तो भूले हुए वैभव को फिर से स्थापित कर अपने इस राष्ट्र को परम वैभव के शिखर पर ले जाना होगा। ❑❑

राष्ट्र की विशेषता

वैदिक दृष्टिकोण में राष्ट्र एक निर्जीव भू या भूखण्ड नहीं है, वरन् एक जीता-जागता शाश्वत देवता है। ऋषियों ने इसे आध्यात्मिक स्वरूप दिया है। सांस्कृतिक राष्ट्रियता का शंखनाद करनेवाले उग्रतपा वैदिक ऋषियों की उदात्त घोषणाएँ आजके शैशव ज्ञान का दम्भ देखकर मुस्करा रही हैं। स्पष्टरूप से राष्ट्र के भौतिक व आध्यात्मिक स्वरूप को दर्शाता हुआ यह वेदमन्त्र देखिए-

५. मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ***ऋग्वेद- ४/४२/१.***

अर्थ- **मम क्षत्रियस्य** (मैं क्षत्रिय हूँ, और मेरा) **राष्ट्रम्** (राष्ट्र) **द्विता** (दो प्रकार का है)। **यथा अमृता नः** (जिस प्रकार देवता हमारे हैं) **विश्वे विश्वाय** (इस जनस्थान की सभी जनता है)।

भावार्थ- १. यहाँ जनस्थान और जनता अर्थात 'विश्वे' और 'विश्वाय' दो पद भूखण्ड और जनसंस्कृति के लिए प्रयुक्त हैं।

२. देवता और राष्ट्रजन में समानता दिखाना राष्ट्रियता की आध्यात्मिक अवधारणा है।

३. राष्ट्र में क्षात्रतेजसम्पन्न व्यक्ति को ब्राह्मतेज की आध्यात्मिकता को संजोने की अनोखी प्रेरणा देता हुआ यह मन्त्र क्षत्रिय के द्वारा जनता में ईश्वरत्व का दर्शन कराता है।

ब्रह्म ही राष्ट्रों का आधार होता है। वेदों में 'राष्ट्र' शब्द 'राष्ट्रत्व' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।

६. ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्म च कर्म च ***भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले।। अथर्व- ११/७/१७.***

अर्थ- (ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, श्रम, धर्म, कर्म, भूत, भविष्यत् वीर्य, लक्ष्मी और बल ये सब) **बले उच्छिष्टे** (बलवान उच्छिष्ट ब्रह्म में) (आश्रित रहते हैं- (पूर्व प्रसंग से)

भावार्थ- मन्त्र में उल्लेख की हुई विभूतियाँ अनन्त होने के कारण राष्ट्रतत्त्व भी अनन्त है। द्वितीयतः ये सब ब्रह्म में आश्रित हैं। अतः राष्ट्र भी परमात्मा में आश्रित तत्त्व है। मनुष्य जिस तरह ऋतसाधना और तपसाधना के जरिए परमात्मस्वरूप बन सकते हैं उसी तरह राष्ट्रसाधना से भी ईश्वररूप बन सकते हैं। तृतीयतः सृष्टि प्रक्रिया में क्रमशः ऋत, सत्य, और तप के पश्चात् राष्ट्र का निर्माण किया गया, फिर मनुष्य ने श्रम, कर्म और धर्म के जरिए भूतकाल में समाजजीवन को सजाया तथा भविष्य की ओर पग बढ़ाते हुए ओज, लक्ष्मी व बलसाधना में अपनी योजनाएँ बनाईं। इसी विषय को आगे बढ़ाता हुआ यह मन्त्र देखिए-

७. समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः।। अथर्व- ११/७/१८

अर्थ- समृद्धिः, ओज, आकूतिः (इष्ट फल विषयक सिद्धान्त), **क्षत्रम्** (क्षात्रतेज) **षडुर्व्यः** ((छः उर्वियाँ) द्यौ, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल और औषधियाँ) **संवत्सर, इडा** देवता (हवन में बचा हुआ पुरोडास जिस देवता को दिया जाता है) **प्रैष** (ऋत्विजों को कर्म में प्रेरित करने वाले मन्त्र) ग्रह और हवि) **उच्छिष्टे अधि** (उच्छिष्ट ब्रह्म में आश्रित हैं)

भावार्थ- जिस तरह समृद्धि, ओज,समय, सुचिन्तन, भोज्य पदार्थ आदि को परमात्मा का प्रसाद मानकर भक्त निहाल होता है और मर्यादित रूपसे उनका उपभोग करता है, उसी प्रकार एक राष्ट्रभक्त भी अपने राष्ट्र को ईश्वर का ही प्रसाद और महती अनुकम्पा मानकर राष्ट्रिय समृद्धि का मर्यादित उपभोग करता है।

द्वितीयतः मनुष्य को परिपूर्ण मानव बनने हेतु आवश्यक तत्त्वों की जो लम्बी सूची दी गई है उसमें 'राष्ट्र' शब्द का होना भी 'राष्ट्रत्व' को ही दर्शाता है।

राष्ट्रतत्त्व की निर्मिति भी अपने में एक महत्ता संजोए हुए है। देवताओं के तेज से जिस प्रकार माँ दुर्गा प्रकट हुईं उसी तरह उन्होंने महिषासुरों का मर्दन कर

धराधाम को धन्य किया और धर्म-ध्वजा फहराते हुए ''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम'' की उक्ति को चरितार्थ किया। दुर्गा सप्तशती में आया है-

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा।। २/१३

इसीप्रकार राष्ट्रत्व के बारे में वेदों में मिलता है-

> ८. *परि त्वा धातु सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभिता सर्वा अरातीरव क्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सुनृतावत्।।*
> *अथर्व- १३/१/२०*

अर्थ- सविता देवःत्वा परिधात् (सविता आपको चारों ओर से पुष्ट करे) अग्निर्मित्रावरुणौ वर्चसा अभि त्वा (अग्नि, मित्र और वरुण अपने तेज से चारों ओर से दीप्त करें) राष्ट्रम् आ इहि इदं सुनृतावत् अकरः (राष्ट्र में आओ और इसे सत्यवाणी से सम्पन्न कराओ) सर्वाः अराति अवक्रामत् (सभी शत्रुओं को दबाने की क्षमता रखो)।

भावार्थ- यहाँ हम सविता अग्नि मित्र, और वरुण का निर्वचन करते हैं।

सविता- षुञ् और षूङ् धातु से सविता बनता है। अर्थात् यः चराचरं सुनोति सूते उत्पादयति वा। तात्पर्य यह है कि चराचर जगत का सर्जक होने को कारण सविता नाम पड़ा।

इन्द्र- सातवलेकर ने इन्द्र शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि वह इन्द्र अर्थात् शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करने वाला है। (अथर्ववेद-मातृभूमि और स्वराज्य शासन- पृ.१५६) दयानन्द सरस्वती ने 'इदि' परमैश्वर्ये धातु से इन्द्र शब्द को निष्पन्न माना है और ''यः इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः'' ऐसा कहा। सत्यार्थ प्रकाश.(पृ.१०)

अग्नि- 'अञ्चु' गतिपूजनयोः धातु से अग्नि का निर्वचन करते हुए दयानन्द सरस्वती कहते हैं- ''योऽञ्चति अच्यतेऽगत्यङ्गत्येति सोऽयमग्निः'' ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, प्राप्त होने और पूज्य होने के कारण ही प्रभु का यह नाम पड़ा (सत्यार्थ प्रकाश पृ.९)

मित्र- ''मीतेर्मरणात् त्रायते इति मित्रः एतन्नामको देवः'' मृत्यु से त्राण दिलाने के कारण ही परमेश्वर का एक नाम 'मित्र' पड़ा। (सायण (९) व्याख्या

अथर्व ३/८/१ में) दयानन्द सरस्वती कहतें हैं ''मेद्यति स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः'' याने वही देव मित्र है जो सबको स्नेह करता है और स्वयं भी स्नेही बनता है। उन्होंने ''ञिमिदा स्नेहने'' धातु से इसे निष्पन्न माना है (सत्यार्थ प्रकाश-पृ.१०)

वरुण- 'वृञ् वरणे' और 'वर इप्सायाम्' धातुओं से निष्पन्न मानकर दयानन्द लिखते हैं- **''यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून् धर्मात्मनो वृणोति''** और **''यः शिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्मभिर्व्रियते सः वरुणः''** अर्थात् जो आत्मयोगी, विद्वान्, मुक्ति की इच्छा करनेवाले मुक्त और धर्मात्माओं का स्वीकारकर्ता अथवा जो शिष्ट, मुमुक्षु, मुक्त और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर 'वरुण' संज्ञक है'' सत्यार्थ प्रकाश- पृ.१०।

ये देवता अपने तेजरूपी इन गुणों को सींचकर निर्जीव भूखण्ड को राष्ट्र बनाते हैं। इससे राष्ट्र निर्माण में व्यवहृत गुणों का पता तो चलता ही है, साथ ही ईश्वरीय प्रेरणा से ही राष्ट्रनिर्माण के इतिहास का भी पता चलता है। राष्ट्रनिर्मिति के पहले ऋषियों व मुनियों के द्वारा की गई तपस्या में राष्ट्र को 'इन्द्रजूत' याने ईश्वर प्रेरित कहा गया।

९. अच्छा न इन्द्रं यशसा यशोभिः यशस्विनं नमसाना विधेम
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम।।
अथर्व- ६/३९/२

अर्थ- नः (हमारे) **अच्छ** (अनुकूलता से रहने वाले) **यशसम्** (यशस्वरूप) **यशोभिः यशस्विनम्** (प्रभूत कीर्तियों से शोभित) **इन्द्रम्** (इन्द्र को) **नमसाना विधेम** (नमस्कार करते हैं)। **सः नः इन्द्र** (हे वैसे हमारे इन्द्र) **नः** (हमें) **इन्द्रजूतम्** (इन्द्रप्रेरित) **राष्ट्रम्** (राष्ट्र को) **रास्व** (प्रदान करो)।

भावार्थ- हमारे पूर्वजों ने कितनी ही तपस्याएँ की होंगी, अनुसन्धानों की कितनी ही श्रेणियाँ खड़ीं की होंगी, उन तपस्याओं में कितनों की बलि भी चढ़ी होगी, कितने ही हिंस्र वन्य जन्तुओं के शिकार हुए होंगे, कितनों ने ही दुरारोग्य रोगों से जकड़कर नदी के तटों व जंगलों में तड़पते हुए प्राण त्यागे होंगे, परन्तु धन्य हैं वे ऋषिगण जिन्होंने इन्द्रजूत याने ईश्वर प्रेरित राष्ट्र की निर्मिति हेतु तपस्याएँ अनुष्ठित कीं, जीवन को तिल-तिल जलाकर उत्तरपुरुषों (हमलोगों) के लिए गौरवशाली इतिहास की अद्भूत दृष्टि दे गए एवं युगानुकूल चिन्तन-

मनन की लड़ियों में चलते जाने हेतु "चरैवेति" का मन्त्र भी दे गए।

उस महान राष्ट्र की राष्ट्रियता को स्वीकार कर ऋषिगण अपने राष्ट्रजन को यशस्वी बनाने को भी प्रार्थना करते हैं। अतः भूतकाल से प्रेरणा लेकर वर्तमान में कदम रखते हुए भविष्य की ओर देखकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता हुआ यह मन्त्र अत्यन्त प्रेरणादायक है।

इन्हीं कारणों से राष्ट्रियता की संकल्पना कोरा-नारा नहीं यह तो हमारे जीवन की श्रद्धा है जिसे संस्कृतिक स्वरूप देकर ऋषियों ने विश्व के सामने रखा और समूचे विश्व को श्रेष्ठ बनाने का बीड़ा उठाकर सांस्कृतिक चैतन्य कां बिगूल फूँका- "ऋण्वन्तु विश्वेऽमृतस्य पुत्राः"

राष्ट्र कहते ही आज के राजनीति शास्त्र के अध्येता प्लेटो, अरस्तु, और स्मिथ से आगे कदम ही नहीं बढ़ा सकते। उनसे हम कहना चाहते हैं कि- हे भारत माता की अभागी सन्तानों, जरा माँ की कोख से पैदा हुए पूर्वजों की थाती को पहचानने का प्रयास तो करो और देखो तो सही राष्ट्र -चिन्तन की भव्य भागीरथी की भाग्यशाली धारा हमलोगों की ही तो है। इस सम्पत्ति को अपनाकर विश्व को पहचानने की देरी भर है, सारा विश्व झूककर हमारे चरणों में आने को आतूर दिखाई दे रहा है। हमारे ऋषियों ने कहा- "राष्ट्र" का अधिपति ईश्वर होता है। जरा देखिए ऋग्वेद की ऋचा में ऋषि की ऋतम्भरा वाणी क्या कहती है-

१०. ऋतेन राजन् अनृतं विविञ्चन् मम राष्ट्रस्य आधिपत्यमेहि

ऋग्वेद. १०/१२४/४

अर्थ- राजन् (हे राजा वरुण,) ऋतेन (ऋत से) अनृतं विविञ्चन् (अनृत को छानंते हुए) मम राष्ट्रस्य आधिपत्यम् एहि (मेरे रांष्ट्र का आधिपत्य स्वीकारो)

भावार्थ- ऋत ही सनातन धर्म है, Griffith को भी इसे Eternal law कहता हुआ पाया जाता है। (Griffith का ऋग्वेद भाष्य पृ. ५६१) हरिहरनाथ त्रिपाठी ने ऋत की विस्तृति से ही सांख्य दर्शन में वर्णित सत्व, रज और तम की सृष्टि बताई है। (प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका पृ.२१७)। ऋग्वेद में कहा है कि ईश्वर की सृष्टि की इच्छा होने के पश्चात् उसने तपस्या से पहले ही

ऋत का जन्म दिया, फिर सत्य अस्तित्व में आया।

ऋतञ्च सत्यञ्चाभिध्यात् तपसोऽध्यजायत ऋग्वेद. १०/१९०/१

सब कुछ ऋत में है और सभी कुछ ऋत से ही उत्पन्न हुआ है (ऋ. ४/२३/८) W.N.Brown का कहना है "प्रत्येक वस्तु व्यवस्थित रूप में थी, नियन्त्रण के नियम थे। प्रत्येक, देवता अपने निश्चित कार्य करते थे। इसं प्रकार की प्रत्येक व्यवस्था एवं नियम ही ऋत हैं"। ये नियम शाश्वत नियम कहलाए और शाश्वत नियम को ही अंग्रेजी में Eternal law और हम सनातन धर्म कहते हैं। अतः ऋत सनातन धर्म होने के कारण अधर्म ही अनृत कहलाता है। अतः धर्म और अधर्म में धर्म पक्ष का समर्थन करते हुए उसे स्वीकारना ही इस वेदमन्त्र का उपदेश है।

इस में सम्बोधित राजन् शब्द वरुण के लिए प्रयुक्त है- यह पूर्वप्रसंग से स्पष्ट होता है। हम वरुण के तात्पर्य की व्याख्या कर चुके। अन्त में कहना यही है कि वरुण परमेश्वर का एक नाम है और राष्ट्रभक्त उसे कह रहा है "मम राष्ट्रस्य आधिपत्यमेहि" (मेरे राष्ट्रका आधिपत्य स्वीकारो)

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्र के चिति तत्त्व की व्याख्या की है। उन्होंने वैदिक चिन्तन की आधुनिक व्याख्या सामने रखी है। एक तरफ वैदिक ऋषि ऋत को राष्ट्र हेतु अपरिहार्य मानते हैं और दूसरी और उसी व्याख्या के अनुरूप पण्डितजीने उसे चितितत्त्व कहा। ऋत और चिति तत्त्व समार्थक कहे जा सकते हैं क्योंकि-चित् तत्त्व सनातन या शाश्वत ही होता है ।जहाँ आत्मतत्त्व का चिन्तन चलता है उसे आध्यात्मिक चिन्तन कहा जाता है अतः चिति तत्त्व या ऋत तत्त्व चित् स्वरूप होने के कारण वे आत्मरूप कहते हैं, इसलिए राष्ट्र चिन्तन भी आध्यात्मिक चिन्तन बन जाता है। प्रस्तुत मन्त्र में कहा गया कि वरुण (परमेश्वर) ही राष्ट्र के आधिपत्य को स्वीकारने की योग्यता रखता है। क्षणभङ्गुर मानव तो राष्ट्र की सन्तान ही कहलाता है। यहाँ तक कि-राम और कृष्ण ने भी अपने को भारत माता की सन्तान ही माना। देखिए राष्ट्र के आध्यात्मिक स्वरूप की घोषणा करता हुआ यह वेदमन्त्र क्या कहता है-

११. त्वामाहुर्देव वर्म त्वं दर्भ ब्रह्मणस्पतिम्।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि।। अथर्व. १९/३०/४

अर्थ- दर्भ त्वां देववर्म आहुः (हे दर्भ, तुम्हें देवों का कवच कहते हैं) त्वाम् इन्द्रस्य वर्म आहः (तुम्हें इन्द्रका भी कवच कहते हैं) दर्भ त्वं ब्रह्मणस्पति त्वं राष्ट्राणि रक्षसि (हे दर्भ तुम ब्रह्मणस्पति और राष्ट्रों की भी रक्षा करते हो)

भावार्थ- यहाँ हम दर्भ की व्याख्या नहीं करेंगे। परन्तु यह स्पष्ट है कि- देवताओं के अस्तित्व, इन्द्र की सत्ता एवं ब्रह्मणस्पति की रक्षा जितने महत्व का है ऋषि ने इस ऋचा में राष्ट्र को भी वही मर्यादा दी है। इन सब श्रेष्ठ देवगणों के मध्य में राष्ट्र को भी स्थान देकर उन्होंने राष्ट्रियता के भारतीय दृष्टिकोण की महानता एवं उदारता की स्वीकृति ही दे दी। धन्य हमारा भारत, हमारे शास्त्र, हमारे पुरखे और सतत् चलनेवाली हमारी गौरवदायिनी और स्फूर्तिदायिनी महान सांस्कृतिक परम्परा!! ❑❑

राष्ट्रियता की प्राप्ति

चिन्तन के अस्पष्ट भँवर में फँसे हुए, Nation को ऐक्यमत से परिभाषित करने में आज तक भी व्यर्थ बने हुए, पाश्चात्य पण्डितों के वाक्यों को ही 'साहेब वाक्यं प्रमाणम्' मानकर शोध करनेवाले हमारे आजके भारतीय पण्डित State, Nation देश, राष्ट्र आदि शब्दों के गुत्थी को सुलझा भी नहीं पा रहे हैं। अपने में झाँकने की दृष्टि का अनस्तित्व ही इसका प्रमुख कारण है। Nationality, Citizenship, नागरिकता और राष्ट्रियता में जिन्हें कभी प्रभेद नहीं दिखाई देता ऐसे लोगों की किताबें पढ़कर हम कभी भारत को United Nations' Organisation के सदस्य के नाते एक Nation मानते हैं तो कभी राजनीति शास्त्र के आधारपर भूखण्ड, जनसंख्या, सरकार, और संप्रभुता सम्पन्न होने के कारण State भी कहते हैं। **आखिर भारत क्या है State या Nation?**

इन शब्दों को लेकर माथापच्ची वही करें जो इन शब्दों के गुलाम हैं, हम तो अपने शब्द, राष्ट्र, राष्ट्रियता, राज्य, जैसे शब्दों को लेकर चर्चा करेंगे और हाँ, परकीयों ने कोई शब्द दिए और उसको परिभाषित करने के शब्दों को ढूँढ़ना पाण्डित्य माना गया, स्वाभिमानहृदय राष्ट्रभक्त इसे स्वीकारता नहीं। वह तो अपने शब्दों को परिभाषित एवं स्थापित करना चाहता है, उन शब्दों के अन्तर्निहित दर्शन को अपने में उतारकर आदर्श प्रस्तुत करता है और फिर वसुधैव कुटुम्वकम् के वैश्विक दृष्टि के कारण इन विचार और आदर्शों को बिखेरता है।

आज राष्ट्रियता के दिव्य स्वरूप का विशाल भवन मानों खण्डहर में बदल गया है। लोग राष्ट्रियता और Citizenship में भेद नहीं देखते क्यों कि यूरोपीय कुशिक्षा की पट्टी जो बँधी है। हम एक सामान्य उदाहरण रखते हैं। **डॉ. हरगोविन्द खुराना U.S.A के Citizen हो सकते हैं परन्तु वे भारतीय ही माने जाते हैं और जिस अर्थ में वे भारतीय हैं वही वैदिक राष्ट्रियता है,**

उसे ही हम सांस्कृतिक राष्ट्रियता कहते हैं।

राष्ट्र क्या है- (वैदिक दृष्टि)

१. ''वेद में 'राष्ट्र' शब्द (राजते तत् राष्ट्रम्) जो चमकता है वह राष्ट्र है इस अर्थका बोधक है। जो मनुष्यों का समुदाय भूमण्डल पर अपने कमाये यश से चमकता है और सब अन्य लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच सकता है, वही वैदिक दृष्टि से राष्ट्र है। अन्य मानवी समुदाय राष्ट्र नहीं हैं। इस प्रकार का राष्ट्र विस्तार से छोटा हो या बड़ा, वह राष्ट्र में इस प्रकारका तेज उत्पन्न करना चाहिए और बढ़ाना चाहिए तभी उनके देश का नाम वैदिक रीति से 'राष्ट्र' होगा'' **(अथर्व वेद- मातृभूमि और स्वराज्यशासन पृ.१०४, सातवलेकर जी द्वारा लिखा हुआ ग्रन्थ)**

पण्डित नरहरि नारायण भिड़े अपने ग्रन्थ में इस तरह 'राष्ट्र' शब्द को परिभाषित करते हैं-

२. ''या मानवध्येयविषयिण्यो (अन्तर्जीवनविषयिण्यो वा) भावनाः मानवजीवनं दिव्यं च रम्यं कुर्वन्ति , याश्च मनोभूमिकायां समवतीर्णा वंशो, भाषा सवाङ्मया वार्ताहितैकता (community of Economic interest) परम्परा, देशो, राज्यतन्त्र, परकीयाक्रमणविषये दक्षता च इति सप्तभिः अंगैः अभिव्यक्ताः भवन्ति, ताः समुदिताः राष्ट्रियत्वस्य स्वरूपम्। एतादृशराष्ट्रियत्वविशिष्टो जनसमाजो राष्ट्रं नाम। तस्य समाजस्य धटकश्च राष्ट्रियः''। (किं राष्ट्रं कश्च राष्ट्रियः- पृ.४०)

अर्थात् मानवध्येयविषयक अथवा अन्तर्जीवन विषयक जो भावनाएँ मानवजीवन को दिव्य और सुन्दर बनाती हैं, मनोभूमिका में समाहित वंश, भाषा, वार्ताहितैकता (community of Economic interest) परम्परा, देश, शासनतन्त्र, परकीय आक्रमण में निरन्तर सजगता- ऐसे सात अंगों से जो अभिव्यक्त होते हैं, वे समुदित तत्त्व ही राष्ट्रियत्व का स्वरूप हैं। इसप्रकार की राष्ट्रियताविशिष्ट जनसमाज ही राष्ट्र संज्ञक होता है एवं उस समाज का घटक ही राष्ट्रिय होता है।

३. वेद-मन्त्रों के आधार पर हमने अपने शोध ग्रन्थमें Nation को राष्ट्र शब्द का पर्यायवाची मानते हुए 'राष्ट्र' शब्द को इस तरह परिभाषित किया- "A rastra is such a geo- Cultural territory of land having warrior

protectors, awaken *purohitas*, conscious and well-organised Society which are conducted by a powerful (spiritual) administration in which the people should have
their cultural heritage, national and motherly feelings to that territory of land." (Nation, Nationalism and Social Structure in Ancient India-p.17)

राष्ट्रिय बनना

इस प्रकार के राष्ट्र की राष्ट्रियता किसी ट्रस्ट की ट्रस्टी के सदृश नहीं हुआ करती। राष्ट्रियता तो आध्यात्मिक प्रेरणा है।

पुरोहित एक व्यक्ति को राष्ट्रियता स्वीकारने की प्रेरणा देता है एवं बार बार उसे अस्थिर न होते हुए लक्ष्यविन्दु की ओर वज्र संकल्प से आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करता है।

> *१२. इहैवैधि मापच्योष्ठा पर्वत इवाविचाचलत्*
> *इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय।।*
> *ऋग्वेद-१०/१७३/२ अथर्व- ६/८७/२.*

अर्थ- इह एव एधि (यहीं पर वृद्धि को प्राप्त होओ) मा अपच्योष्ठा (कभी मत गिरो) पर्वत इव अविचाचलत् (पर्वत के तरह अविचल रहो) इह इन्द्र इव ध्रुवः तिष्ठ (यहीं पर इन्द्र के तरह स्थिर बनकर रहो) इह राष्ट्रम् उ धारय (यहीं पर तुम राष्ट्र/राष्ट्रत्व को भी धारण करो)

भावार्थ- जब किसी भी व्यक्ति को राष्ट्रियता का बोध कराना होता है तब पुरोहित उसकी योग्यताको परखता है, पात्रत्व के नीर-क्षीर विवेक के पश्चात् बोध्र को उपलब्धि और उपलब्धि को क्रियान्वयन कर सकने की क्षमता को पहचानने के बाद ही अपने यजमान को कहता है-

१. इहैवैधि-यहीं पर आगे बढ़ो, क्योंकि यही तुम्हारी मातृभूमि है। सतत आगे बढ़ने याने निरन्तर प्रगति करने का पुरोहित का यह पहला उपदेश बड़ा ही मार्मिक है।

२. मापच्योष्ठा- गिरने को मना करते हुए पुरोहित अपने यजमान को उत्तम श्रेणी के मानव समाज में होने की प्रेरणा दे रहा है-

''प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्या'' भर्तृहरि

प्रारम्भ करने के पश्चात् विघ्नित होने पर कार्य को छोड़नेवाला व्यक्ति

मध्यम श्रेणी के अन्तर्गत आता है। अतः प्रारम्भ किए गए कार्य के आरोहण काल में न गिरने का उपदेश व प्रेरणा देकर पुरोहित अपने यजमान को उत्तम श्रेणी की कोटी में ले जाना चाहता है।

३. पर्वत इव अविचाचलत्-पुरोहित अपने यजमान को पर्वत के तरह अविचल रहने की प्रेरणा देता है। यह पद (वचन व सिद्धान्त की) स्थिरता का द्योतक है। देखिए-

''उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
प्रचलति यदि मेरु : शीततां याति बह्निः
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायाम्
न भवति पुनरन्यत् भाषणं सज्जनानाम्''

४. इन्द्र इव इह ध्रुवः तिष्ठ- कहकर अपने यजमान को इन्द्र अर्थात् शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने की योग्यता व वीरता से सम्पन्न होने की शिक्षा दी है।

अतः परिपूर्ण राष्ट्रियता के आधान हेतु यह चार योग्यताएँ आवश्यक होती हैं।

जब यजमान में इन गुणों का विकास होता है तब पुरोहित आगे क्या करता है, उसकी चर्चा में देखिए-

१३. ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पति
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्।।
ऋग्वेद- १०/१७३/५ और अथर्व-६/८८/२

अर्थ- राजा वरुणः (राजा वरुण) देवः बृहस्पति (बृहस्पति देवता) इन्द्रः च अग्निः च (इन्द्र और अग्नि) ते (तुम्हारे लिए) राष्ट्रं धारयताम् (राष्ट्र की धारणा कराएँ)।

भावार्थ- यहाँ पुरोहित अपने यजमान को राष्ट्रिय बनाने की योजना से वरुण, बृहस्पति, इन्द्र, और अग्नि से प्रार्थना करता है। हमने वरुण, इन्द्र, अग्नि आदि के गुणों का विवेचन 'राष्ट्र की विशेषता' नामक प्रघट्ट में किया है। वैसे गुणवानों से पुरोहित कहता है कि-वे उनके उस यजमान में राष्ट्र अर्थात् राष्ट्रत्व को आरोपित करें। अतः राष्ट्रिय बनने हेतु मनुष्य को पहले राष्ट्र और राष्ट्रजीवन की विशेषता का ज्ञान होना आवश्यक होता है। इसके साथ ही

राष्ट्रजीवन के किसी भी एक अंग को जीवन पथ के नाते स्वीकारना पड़ता है।

इसतरह अनेक विद्याओं से विभूषित विद्वानों से राष्ट्रतत्त्व की शिक्षा ग्रहण कर एक योग्य राष्ट्रभक्त बनने की इस वैदिक प्रक्रिया के स्खलन के कारण हम हनुमान के तरह अपनी महत्ता भूल बैठे। यही कारण है कि-आज Nation और Natioalism के धुंधले विचारों की बलि होते हुए हम कहने लगे-भारत एक बनता हुआ राष्ट्र है। जरा विडम्बना भरे इस वाक्य को देखिए-

'' काफिले आते गए हिन्दोस्ताँ बसता गया''

१४. आयातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवीम् उस्त्रियाभिः
अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद् राष्ट्रं संवेश्य दधातु।।
अथर्व- ३/८/१

अर्थ- मित्र (हे मित्रदेव) ऋतुभिः कल्पमानः (ऋतुओं से हमारे दीर्घायुष्य को कल्पित करते हुए) उस्त्रियाभिः (किरणों से) पृथिवीं संवेशयन् (इस भूमि को व्याप्त करते हुए) आयातु (आओ)। अथ (इसके पश्चात्) वरुण-वायु-अग्निश्च (वरुण,वायु,और अग्नि भी) अस्मभ्यम् (हमें) बृहद् राष्ट्रं संवेश्य दधातु (इस बड़े राष्ट्र को समाहित कर धारण कराएँ)।

भावार्थ- Eat drink and be merry के थोथे पाश्चात्य चिन्तन में फँसे हुए जड़वादी चिन्तक क्या जानें- भारतीय चिन्तन सरणी में फली फूली सनातन संस्कृति की सन्तानें केवल खाने पीने के लिए नहीं बनी? यहाँ तो कहा है-

आहार-निद्रा-भय-मैथुनञ्च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः

अतः वैदिक सन्तान 'जीवेम शरदः शतम्' की संकल्पना लेकर जीती है और 'ऋतुभिः कल्पमानः' ''ऋतुओं से दीर्घायुष्य'' पाने की प्रार्थना करते हुए मीतेर्मरणात् त्रायते इति मित्र ऐसे मृत्यु से त्राण देने वाले मित्रदेव से दीर्घायुष्य की याचना करती है। परन्तु क्यों? इसका उत्तर 'Be merry' नहीं ''अस्मभ्यं वृहत् राष्ट्रं संवेश्य दधातु'' ऐसा कहा गया। वह चाहता है कि उसे राष्ट्रियता की धवल किरणों को प्रदान करने हेतु वरुण, वायु, और अश्विन प्रमुख बनें।

द्वितीयतः उनके प्रयास से ही अर्चकों में राष्ट्र का समावेश सम्भव है इसलिए उनके गुणों से ज्योतित होने हेतु उन नामों के तात्पर्य जानने होंगे जो इस ग्रन्थ में पहले ही दिए गए।

तृतीयतः यहाँ भी राष्ट्रियता को धारण करने की बात आती है। यह अदालत में हस्ताक्षर करके, संविधान की धारा को पढ़कर नहीं पाई जाती, राष्ट्रियता तो अन्तरात्मा की आवाज हुआ करती है।

राष्ट्रभक्त और राष्ट्रियता ज्ञानसम्पन्न जन हमेशा "समानो मन्त्रः समितिः समानी" की दिव्य भावना को संजोकर किस तरह राष्ट्र में संगठन की आवश्यकता का सूत्र बताते हैं इसकी मनोरम व्याख्या देखिए-

१७. ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम्।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः।।
अथर्व-१३/१/३७

अर्थ- ये राष्ट्रभृतः देवाः सूर्यम् अभितः यन्ति (जो राष्ट्र को भरण करनेवाले देवगण सूर्य के चारों और घूमतें हैं) ते (वे देवगण और) रोहितः (रोहित देव) तैः (उनसे, राष्ट्रजनों से) संविदानः (प्रसन्नचित्त होकर) सुमनस्यमानः (और सुन्दर एवं एक ही मत को स्वीकारते हुए) राष्ट्रं दधातु (राष्ट्र को धारण कराएँ)।

भावार्थ- (१) देवता ही राष्ट्र का भरण पोषण करते हैं एवं सूर्य को चक्कर लगाते हैं। इसमे स्पष्ट होता है कि- राष्ट्र का जीवन कोरा भौतिक नहीं उदात्त विचारवाले राष्ट्रों को प्रभु प्रह्लाद के तरह स्नेह करते हैं, उनकी रक्षा में सर्वस्व देनेपर भी वे तृप्त नहीं होते। इसीलिए तो इस धर्मभूमि में 'परित्राणाय साधूनाम्' और "यदा अधर्मस्य अभ्युत्थानं भवति"- तब-तब दुष्कृतिकारियों के विनाश हेतु वे अवतीर्ण होते रहते हैं। प्रभु ने भारत में ही बार बार अवतार ग्रहण किया, भारत के विभिन्न स्थानों को तीर्थभू बना दी और व्यास से कहलवाया

"अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्" भागवत।
(करोड़ों जन्म के पूण्य होंगे सञ्चित तो कभी
प्राणी मनुष्य हो जन्म लेते भारत में सुधी।।)

(२) 'देवगण राष्ट्रजनों से प्रसन्न हों' कहने का एक विशेष तात्पर्य है। अपने में दिव्यत्व के कारण ही देवता नाम पड़ा (निरुक्त)। दिव्य भावों से परिपूर्ण चिन्तक तभी प्रसन्न होता है जब दिव्यता ही दिखाई दे। तात्पर्य यह है कि राष्ट्र के राष्ट्रजन दिव्य भावों को हृदय में सँजोकर आगे बढ़ें।

(३) सभी से सुन्दर मनवाले बनकर देवगण भी राष्ट्र में सुन्दर आचरण करें- ऐसी अपेक्षा रही। यह ऐक्यमन्त्र का उद्घोष करता है।

'एकता में शक्ति है' उक्ति की सार्थकता हेतु सभी के मन एक होने ही चाहिएँ।

(४) ऐसी स्थिति में ही भक्त प्रार्थना करता है **''राष्ट्रं दधातु''** राष्ट्र को धारण कराओ।

राष्ट्रियता प्राप्ति की यह अनोखी पद्धति इसलिए भी आध्यात्मिक है कि-जिस तरह भक्त अपने प्रभु को दर्शन देने हेतु आर्तस्वर से पुकारता है उसी तरह राष्ट्र पाने की व दिलाने की आर्य ऋषि की ललक देखते ही बनती है। जिस तरह ईश्वर घट-घट में व्याप्त होता है फिर भी उसे पाने के लिए साधक साधना का आश्रय लेता है उसी तरह राष्ट्रियता तो सभी राष्ट्रजनों में होती है परन्तु यह ललक तो राष्ट्रियता की उपलब्धि की ललक है।

राष्ट्रभाव का चमत्कार हमें यहुदियों के इतिहास में भी देखनेको मिलता है। हजारों वर्षों तक अपनी भूमि से दूर रहकर भी अन्ततोगत्वा अपनी भूमि हस्तगत करने की उनकी रोमहर्षक ऐतिहासिक घटना यही सिद्ध करती है कि-राष्ट्रियता की लौ हृदय में जलती रहे तो राष्ट्रजन की राष्ट्रभूमि समृद्ध, सशक्त और सुदृढ़ रहती है। इसी प्रकार की राष्ट्रियता पाने हेतु पुरातन काल में भी ऋषियों ने तपस्याएँ कीं थीं। □□

राष्ट्रत्व के उपादान

यहाँ राष्ट्रत्व की निर्मिति में जिन तत्वों का समावेश हुआ एवं जिन्हें हमारे 'पूर्वजों' ने अत्यधिक महत्त्व दिया उन तत्त्वों को स्मरण करते हुए उन्हें 'राष्ट्रदा' कहा और पुरोहित उस राष्ट्र को अपने में तथा यजमान में भी किस तरह आधान करना चाहता है उसका वर्णन करनेवाले तीन वेदमन्त्रों की छटा देखिए।

१६. वृष्ण उर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा
वृष्ण उर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि।
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि। शु.यजु.१०/२

१७. अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
ओजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
ओजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
आपः परिवहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
आपः परिवहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
अपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा
अपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि।
अपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा
अपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि। यजु १०/३

१८. सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।

व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
वांशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।।
जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
आपः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त।
मधुमतीर्मधुमतिभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना
अनाधृष्टाः सीदत सहौजषो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधती:"

यजु.- १०/४

अर्थ- पहले हम मन्त्रों में आए हुए सर्वत्र प्रयुक्त शब्दोंका अर्थ करेंगे असि (हो) राष्ट्रदा (राष्ट्र/राष्ट्रत्व देने की क्षमता वाला/वाली) राष्ट्रं मे देहि (मुझे राष्ट्र दो)। राष्ट्रम् अमुष्मै देहि (इस अमुक यजमान को भी राष्ट्र दो) स्थ (कर्ता के बहुवचन होने के कारण 'हो' के अर्थ में 'स्थ' होता है) दत्त (कर्ता के बहुवचन होनेके कारण ही देहि के स्थान पर दत्त आया है)। इन तीनों मन्त्रों में आए हुए 'राष्ट्र' देने वाले तत्त्वों की तालिका इस प्रकार है-

(१) वृष्ण उर्मि (सुख हेतु वृष्टि करने वाली उर्मियाँ)
(२) वृषसेन (शक्तिशाली)
(३) अर्थेत (प्रवाहमानता)
(४) ओजस्वती (ओजपूर्ण)
(५) आप परिहिणी (समयोग्यतावालों के साथ सम्बन्ध रखना)
(६) अपां पति (प्राण)
(७) अपां गर्भः (आत्मिक भाव)
(८)सूर्यत्वक् (सूर्य के समान त्वचा अर्थात्-तेजस्विता)

(९) सूर्यवर्चस (सूर्य की सी कान्ति)
(१०) मान्दा (आनन्द, (सत् चित्, आनन्द में से आया हुआ))
(११) व्रजक्षित (प्राणियों की रक्षा करने की क्षमता)
(१२) वाशा (तृणाग्र में स्थित अर्थात कुशलता)
(१३) शविष्ठा (त्रिदोष शमन करते हुए बल प्रदान करना)
(१४) शक्वरी (रक्षण क्षमता)
(१५) जनभृत (जनता को भी भरण-पोषण करने की क्षमता)
(१६) विश्वभृत (विश्व को भी भरण-पोषण करना)
(१७) आपः स्वराजः (अपने प्रकाश में अन्योन्याश्रित)।

मधुमतीः (हे जलों) **मधुमतीभिः** (मधुर पदार्थों के साथ) **महि क्षत्रम्** (महान क्षात्रतेज को) **क्षत्रियाय** (इस क्षत्रिय के लिए) **बन्वाना** (देते हुए) **पृच्यन्ताम्** (सींचो)। **अनाधृष्टा** (असुरों से पराभूत न होनेवाले) **सहोजसः** (ओज सहित) **महिक्षत्रं** (महान क्षात्रतेज को) **क्षत्रियाय दधतीः** (क्षत्रिय हेतु आरोपण करते हुए) (अवस्थान करो)।

भावार्थ- प्रस्तुत मन्त्र राजसूय यज्ञ में प्रयुक्त होता है। राजसूय यज्ञ करनेवाला यजमान राजा अपने साम्राज्य से अनेक प्रकार की नदियों, तड़ागों, कूपों, सागरों आदि से जल संग्रह करता है। यद्यपि प्रस्तुत मन्त्र में उन 'राष्ट्रदा' तत्त्वों को जल के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया है, फिर भी उन शब्दों के अर्थ विचार करने पर राजसूय यज्ञ का कर्मकाण्ड महान राष्ट्रसाधना का प्रतीकात्मक कार्य होनेका प्रमाण पुष्ट हो जाता है।

अखण्ड राष्ट्र की प्रभुसत्ता हस्तगत करने की योग्यता वाले राजा को जिस परिमाण में राष्ट्रियता का ज्ञान होना चाहिए उस ज्ञान की याचना करते समय पहले पुरोहित अपने लिए माँगता है और फिर यजमान के लिए निवेदन करता है।

इस लम्बी सूची के अलावा देखिए राष्ट्रत्व के और भी उपादान वेदों ने इस प्रकार गिनाए हैं-

१९. *ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो धर्मा अनुरेत आगुः*
प्रजामेका जिन्वत्युर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम्।।
अथर्व. ८/९/१३

अर्थ- तिस्त्रः (तीन देवता अर्थात् सूर्य चन्द्र और अग्नि; (पूर्व,मन्त्रों के प्रसङ्गानुसार)) ऋतस्य पन्थाम् (ऋत के मार्ग में) अन्वागुः (उसके पीछे पीछे चलते हैं), त्रयः धर्माः रेतः अन्वागुः (तीनों धर्मों के साथ रेत याने तेज और वीर्य को लिए चलते हैं।) एका देवयूनां प्रजां जिन्वति (एक देवानुकूल याने सात्विक प्रजा को तुष्ट करती) एका उर्जम् (एक तो उर्जा अर्थात् शक्ति और बल को देती हुई) एका राष्ट्रम् रक्षति (एक राष्ट्र की रक्षा करती हैं)

भावार्थ- देश राष्ट्र का शरीर होता है। अतः उस शरीर की रक्षा, पृथ्वीस्थानीय होने के कारण अग्नि को ही करना पड़ा। अतः राष्ट्र में सत्व गुण, शक्ति और बल के साथ साथ उनके सञ्चालन हेतु सूर्य, चन्द्र और अग्नि जैसे दिव्य तत्व भी राष्ट्र के उपादान बनते हैं। उनके अलावा ऋत याने सनातन धर्म का अनुसरण, (जो पहले ही ऋत की व्याख्या में बताई गई) सात्विक प्रजा की सेवा भी उपादानों में समाहित हैं।

राष्ट्र जब भूखण्ड में स्थित होता है तो वह दृश्यमान बनता है। अतः भूसत्ता राष्ट्रत्व के बलिष्ठ संस्थापन हेतु अत्यावश्यक तत्त्व है। उसी दृष्टि से भूसत्ता को धारण करने वाले तत्त्व भी राष्ट्रत्व के उपादान बन जाते हैं। देखिए भूमि को धारण करने वाले तत्त्व कौन से हैं-

''सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति''

अथर्व- १२/१/१

यह मन्त्र उन उपादानों को स्पष्ट करता हुआ कहता है-सत्य, महत् तत्त्व, ऋत, दीक्षा, तपस्या, ब्रह्म भाव और यज्ञ-ये तत्त्व ही भूमि को बचाए रखते हैं। अतः ये भी राष्ट्र के ही उपादान हैं। ☐☐

राष्ट्र-जन

राष्ट्र की पूर्णता, प्रगति और उसका प्राकट्य तभी संभव है जब राष्ट्र के राष्ट्रजन प्रबुद्ध हों। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद खण्डहर में बदले हुए जापान को विश्व के सम्पन्नतम राष्ट्र में आरूढ़ कराने का श्रेय वहाँ की जनता को है। इजरायल का उद्धार करने वाले यहुदी भी सटीक उदाहरण हैं। आत्मतत्व का अध्ययन कर मृत्यु को सफर मानने वाले एवं हँसते हँसते राष्ट्र हेतु फाँसी के फन्दे को चूमने वाले भारत माँ के लाड़ले भी तो हैं। क्या हम घास की रोटी खाकर भी स्वतन्त्रता की लौ को जलाए रखने वाले राणाप्रताप को भूल सकेंगे? ज्वराक्रान्त शरीर से ब्रह्मपुत्र के पानी में रात के अँधेरे में मुगलों से छापामार युद्ध करने वाले राष्ट्रभक्ति के परवाने वीर-पुङ्गव लाचित बरफुकन को भूलें? आध्यत्मिक चेतना को सारथी बनाकर धार्मिक क्रान्ति के उद्घोष के जरिए राष्ट्रभावना को जगाने वाले, शंकराचार्य मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य जैसे आचार्यों की श्रृङ्खला में जुड़नेवाले परवर्ती काल के भारतीय आचार्य चैतन्य, तुकाराम, कबीर, तुलसी, नानक, शंकरदेव और न जाने कितने ही आचार्यों ने अपने सुखभोग, प्रशंसा और सम्मानों को भी बलि चढ़ाते हुए राष्ट्र हेतु किए गए कार्यों को हम भूल पाएँगे? मिट्टी के पुतलों को वीर बनाकर विदेशी आक्रमणकारियों से लड़ाने की योग्यता वाले विक्रमादित्य की याद न करें? ऐसे राष्ट्रजनों के कारण ही भारत-भारत बना और विश्व में भी कई देशों ने राष्ट्रजनों के कारण आर्थिक उन्नति के शिखर को छू लिया। हाँ, वैयक्तिक ज्ञान सम्पदा के क्षेत्र में लोग धनी और निर्धन हो सकते हैं एवं उनके बीच और भी कई श्रेणियाँ बन सकती हैं परन्तु इच्छा शक्ति, संकल्प, लक्ष्यतक पहुँचने की ललक आदि गुणों की दृष्टि से वेदों ने राष्ट्रजनों का वर्गी-करण किया है।

राष्ट्रजन का वर्गीकरण

> **२०. यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्**
> **तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य।।**
> **अथर्व. १३/१/९**

अर्थ- याः ते रुहः प्ररुह (आपके जो रोहणशील और प्ररोहणशील) **याः ते आरुहः** (और जो आपके आरोहणशील प्रजावर्ग हैं) **याभिः दिवम् अन्तरिक्षम् आ पृणासि** (जिनके कारण आप द्युलोक एवं अन्तरिक्ष की रक्षा हेतु भी कार्यशील रहते हैं) **तासाम् पयसा ब्रह्मणा वावृधानः** (उनके दूध जैसे पवित्र ब्राह्मतेज से प्रवृद्ध होते हुए) **रोहितस्य राष्ट्रे विशि जागृहि** (प्रभुके राष्ट्र में जनता के बीच जागते रहें)

भावार्थ- राष्ट्र में रहने वाले राष्ट्रजन राष्ट्र के सजग प्रहरी बनें। इससे राष्ट्र में राज्यों के अथवा एकराट् राज्य (एक अखण्ड राष्ट्र ही राजनैतिक दृष्टि से भी जब अखण्ड राज्य बनता है तब उसे एकराट् राज्य कहा जाता है) के राजा पृथिवी के अलावा द्युलोक व अन्तरिक्ष की सुरक्षा हेतु भी कार्यशील रह पाते हैं। अतः वैसे क्षात्रतेज सम्पन्न सुयोग्य शासक को वेद समुचित मार्गदर्शन दे रहे हैं। फिर लक्ष्यविन्दु की ओर बढ़ने वाले प्रजावर्गों का वर्गीकरण करते हुए वेदों ने संकेत दिया है कि राष्ट्र के राष्ट्रजन सदैव राष्ट्रिय लक्ष का चिन्तन किया करेंगे राष्ट्रिय लक्ष्य से हीन एक भी व्यक्ति राष्ट्र में न रहे। वैसे राष्ट्रजनों का वर्गीकरण इसप्रकार है।

(१) रुहः (रोहणशील) - राष्ट्रजनों का वह वर्ग रोहणशील कहलाता है जिसने लक्ष्य को पहचाना तो है परन्तु उसकी ओर अग्रसर होने का प्रयास करते रहते हैं।

(२) प्ररुहः (प्ररोहणशील) - ध्येयविन्दु की ओर अविराम गति से आगे बढ़ते हुए राष्ट्रजन प्ररोहणशील कहलाते हैं।

(३) आरुहः (आरोहणशील) - राष्ट्र में जो लोग रोहणशीलता एवं प्ररोहणशीलता की परिधि को लाँधकर ध्येयविन्दु के निकट पहुँचे हुए होते हैं उन्हें ही 'आरोहणशील' कहा जाता है। लक्ष्यचिन्तन के कारण तेजस्वी बने हुए व्यक्ति ब्राह्मतेजसम्पन्न बन जाते हैं। और उस पवित्र ब्राह्मतेज को संरक्षण देते हुए आगे बढ़ना क्षात्रतेज के अधिकारी का कर्तव्य बन जाता है।

जब राष्ट्र में ऐसे लोग हुआ करते हैं तब वह राष्ट्र ''रोहितस्य राष्ट्रम्'' याने ईश्वरका राष्ट्र बन जाता है जिसे हम ईश्वरीय राष्ट्र कह सकते हैं। रामराज्य इसका ज्वलन्त उदाहरण है देखिए-

''धर्मेण रक्षतस्तस्य हृष्टपुष्टजनाकुलाः
बभूव पृथिवी सर्वा धनधान्यसमृद्धिनी।।
....
दृष्ट्वा धर्मपरं रामं न चाहिंसत् परस्परम्।।''

राष्ट्रजन की.......... दिव्य कामना की मनोरम छटा बिखेरते हुए ऋग्वेद और अथर्ववेदों में कहा गया- हम राष्ट्रानुकूल बनें''

राष्ट्रानुकूलता

***२१. असपत्नः समत्नहाभिराष्ट्रो विषासहि।
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च।।
ऋग्वेद. १०/१७४/५***

थोड़े परिवर्तन के साथ अथर्ववेद में वही मन्त्र आया है-

***२२. सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहि
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च।। अथर्व. ९/२९/६***

अर्थ- यथा अहम् (जिस प्रकार मैं) सपत्नहा/सपत्नक्षयणः (शत्रुनाश करनेवाला) (असपत्नः (शत्रुहीन बनूँ)- ऋग्वेद के पक्ष में) (वृषा (शक्ति सम्पन्न बनूँ)-अथर्व के पक्षमें) (और) विषासहिः (विजयी बनूँ) (उसीप्रकार) अभिराष्ट्रः (राष्ट्रानुकूल बनकर) (एषां भूतानाम् (इन प्राणियों का)- ऋग्वेद के पक्ष में) (एषां वीराणाम् (इन वीरों का) अथर्व के पक्ष में) जनस्य च (और व्यक्ति के हृदय में) विराजानि (विराजूँ)

भावार्थ- ऋग्वेद में जहाँ शत्रुहीन बनने की बात आई वहीं अथर्व वेद में शक्तिशाली बननेकी बात लिखी गई। इस शक्तिसाधना में वैदिक राष्ट्रभक्त विश्व की अजेय शक्ति पाना चाहता है। चिर विजीगिषा की भारतीय राष्ट्रिय विशेषता का परिचय देता हुआ मन्त्र कहता है ''विषासहि''- मैं विजयी बनूँ। यह विजय अन्य समाजों, देशों, सभ्यताओं व जीवन शैलियों को कुचलने के लिए नहीं वरन् ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'' की समुज्वल धारणा लिए विश्व के ईश्वर पुत्रों को Perpatual Law याने सनातन धर्म के त्रिकालावाधित सिद्धान्तों को देते समय

आने वाली राक्षसी बाधाओं से विजय पाने के लिए है।

द्वितीयतः वैदिक राष्ट्रजन राष्ट्रानुकूल बनना चाहता है। "अभिराष्ट्र" पद इसी हेतु प्रयुक्त है। राष्ट्र के सुख-दुःख, हर्ष-ग्लानि, जय-पराजय, लाभ-हानि सभी अवस्थाओं को अपनी अवस्था मानते हुए राष्ट्र की उन्नति हेतु ही अपने कर्ममार्ग में चलें-यह दृष्टि ही राष्ट्रनुकूल दृष्टि हुआ करती है।

वैदिक राष्ट्रजन सभी जनता व वीरों के हृदय में विराजमान होना चाहता है। अपने सत्कृत्यों से वैदिक विद्वान्,छात्र और अन्य सभी सफल बननेकी इच्छा रखते हैं। अपने किए हुए सत्कार्यों से वह राष्ट्रजन एक इतिहास भी बनाना चाहता है।

इन्हीं विचारों के कारण ही तो यहाँ पर देने के सिद्धान्त को संस्कृति कहा गया। आगे बढ़कर वैदिक राष्ट्रजन इस राष्ट्र के साथ तादात्म्य होने की उसकी प्रवल इच्छा को व्यक्त करता है-

> **२३.** ***मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयतात् रयिम्।***
> ***अहं राष्ट्रस्याभिवर्गे निजो भूयासमुत्तमः।।***
> ***अथर्व- ३/५/२***

अर्थ- पर्णमणे (हे पर्णमणे) **मयि क्षत्रं मयि रयिं धारयतात्** (मुझमें क्षात्रतेज और सम्पत्ति धारण करा)। **अहम्** (मै) **राष्ट्रस्य अभिवर्गे** (राष्ट्र के आप्तपुरूषों में) **उत्तमः** (श्रेष्ठ और) **निजः भूयासम्** (अपना बन सकूँ)।

भावार्थ- 'पर्णमणि' हमारा आलोच्य विषय न होने के कारण हम उस विषय में इतना ही कहेंगे कि-यह एक प्रकार के पत्ते के रस से निर्मित एक औषधिविशेष है जिसे धारण करते ही क्षात्रतेज हिलोरें लेने लगता है, धनार्जन के लिए आवश्यकीय पुरूषार्थ का भी आधान करता है और इसलिए सातवलेकर जी भी कहते हैं, "वैद्यलोग इस मणि की खोज करें"।

राष्ट्रजन क्षात्रतेजसम्पन्न और वैभवशाली बनने के पश्चात् जो बनना चाहता है वह अत्यन्त ही मार्मिक है। वह राष्ट्र के श्रेष्ठजनों का और राष्ट्र का ही निज बनना चाहता है। आज के भारत के धरातल पर उतर कर देखें तो पता चलता है कि कालचक्र के द्वारा भी थाह न पाए जाने वाली सनातन संस्कृति की सरस सरिता के दीर्घ कालीन इतिहास में कितने ही राजर्षि,

ब्रह्मर्षि, महर्षि व देवर्षि बने, कितने राजे महाराजे आए और कालबालूका में अपने पदचिह्न छोड़ गए, अरून्धती, अनसूया, सावित्री, जानकी, सती द्रौपदी गार्गी जेसी मातृविभूतियाँ आईं वे ही तो राष्ट्र के श्रेष्ठ जन हैं। उनका अपना बनने का अर्थ ही होगा- यहाँ की जीवन धारा को अपने में समेट कर इस परम्परा में अपनी सत्ता को ही विलीन कर देना। भूतकाल के महापुरुषों की श्रृङ्खला का अध्ययन चले इसीलिए अथर्व वेद कहता है-

यस्यां पूर्वे भूतकृतः ऋषयो गा उदानृचुः
सप्त सत्रेणवेधसो यज्ञेन तपसा सह (अथर्व- १२/१/३९)

अर्थात् जिस भूमि में पहले अद्भूत कार्य करनेवाले अतीन्द्रिय और ज्ञानी सात प्रकारके सत्रों एवं यज्ञों व, धर्मों के जरिए व्यवहार करते हुए उत्तम वाणी से स्तुति करते रहे हैं, सा नो भूमिः (१/४०) वही हमारी भूमि है। इस तरह इतिहास के महापुरूषों की शिक्षा ग्रहण करना वैदिक राष्ट्र जन को अभीष्ट था। और आज भी इसकी आवश्यकता है। आगे बढ़ते हुए सातवलेकरजी कहते हैं 'राष्ट्रका' अपना बनकर रहनेका यह उपदेश विशेष मनन करने योग्य है। यहाँ राजा, राजपुरुष, अधिकारी वर्ग आदि सब राष्ट्र के अपने बनकर रहें यह उपदेश स्पष्ट है। ''राष्ट्र में रहता हुआ कोई मनुष्य राष्ट्र के लिए पराया बनकर न रहे यहाँ निज बनकर रहनेका भाव क्या है- यह अवश्य देखना चाहिए''। (अथर्ववेद-मातृभूमि और स्वराज्यशासन, पृष्ठ. ७५) प्रस्तुत मन्त्र में एक राष्ट्रजन जिन तत्त्वों पर अधिकार पाना चाहता है उन तत्त्वों की गिनती इस प्रकार होगी-

(१) क्षात्रतेज
(२) अपारवैभव
(३) राष्ट्र के साथ तादात्म्य होना।

एक राष्ट्र भक्त चाहता है कि उसका राष्ट्र परमवैभव के शिखर पर आरूढ होकर जगद्गुरु के आसन पर विराजे। यह कल्पना भारत में बहुत ही प्राचीन कालसे आई है। उस प्राचीनता के प्रमाण वेदों ने ही दिए है-

(१) यस्यां पूर्वे भूतकृतः ऋषयोः गा उदानृचुः अथर्व. १२/१/३९
(२) ''यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे'' अथर्व-१२/१/५
(३) ''याम् अश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे''अथर्व.१२/१/१०

(४) ''याम् मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः'' अथर्व-१२/१/८

अर्थात्- (१) भूतकाल के भीमकर्मा ऋषियोंने तेरे गीत गाए थे।

(२) सृष्टि के तुरन्त पश्चात् जिस भूमिमें पूर्व जनों ने परिक्रमा की थी।

(३) जिस भूमि को अश्विनिकुमारों ने नापा, जिसमें विष्णु ने नाना पराक्रम किए।

(४) हमारे-पूर्वज अति कुशलता से-जिस भूमि की सेवा करते आ रहे हैं।

आदि उदाहरणों से हम कहना चाहते हैं कि क्षात्रतेज एवं अपार वैभव के चलते मानव दानव बन सकता है अतः भूत काल के महापुरुषों पर दृष्टि निक्षेप करने का वैदिक उपदेश उनके बल का सकारात्मक प्रयोग करने की प्रेरणा देता है।

राष्ट्र को परम वैभव के शिखर पर ले जाने की उत्कण्ठा देखें तो जरा-

राष्ट्र को परमवैभवसम्पन्न बनाने की इच्छा

२४. *प्रान्त्यान्त्सपत्नान्त् सहसा सहस्व*
प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय
विश्व एनमनुमदन्तु देवा।। अथर्व. ७/३७/१

अर्थ- जातवेद (हे जातवेद) अन्यान् सपत्नान् (दूसरे शत्रुओं को) सहसा नुदस्व (अचानक दबोच लो) प्रत्यजातान् नुदस्व (उत्पन्न होने जा रहे शत्रुओं को नष्ट करो) इदं राष्ट्रं सौभगाय पिपृहि (इस राष्ट्र को सौभाग्य के शिखर तक पहुँचाओ) विश्वे देवाः एनम् अनमदन्तु (विश्व के श्रेष्ठ जन इसका अनुमोदन करें।)

भावार्थ- राष्ट्र में राष्ट्रिय भाव के विघातक तत्त्व को अचानक ही दबोचना चाहिए। आतंक, पृथकता, लूट-खसोट आदि चलानेवाले राष्ट्रद्रोही होते हैं,

वैदिक ऋषि वैसे लोगों को निष्ठुरता से दमन करने का परामर्श देता है। इसी वैदिक मार्गदर्शन के चलते श्री कृष्ण ने अर्जुन को आदेश दिया कि-वह भीष्म पर शरसन्धान करे और कर्ण पर निरश्त्र काल में भी प्रहार करे, द्रोणचार्य का शिरच्छेद हो, दुर्योधन की जंघाए तोड़ी जाएँ आदि आदि। इस वैदिक आदेश को न समझने के कारण ही पृथ्वीराज ने गोरी को सत्रह बार क्षमादान किया पर अन्ततोगत्वा उसी गोरी के अत्याचार से अपने प्राण गँवाने पड़े और भारत माता गुलामी के जंजीरों में जकड़ी गई। ऐसे राष्ट्रद्रोहियों से शान्तिवार्ता का प्रस्ताव देनेवाले इतिहास के अधकचरे ज्ञान के राजनेता दुःखद भविष्य के इतिहास की भूमिका लिख रहे हैं।

एक कदम आगे बढते हुए मन्त्र कहता है *'प्रत्यजातान् नुदस्व'* उत्पन्न होने जा रहे शत्रुओं को ही नष्ट कर दो। तात्पर्य यह है कि-राष्ट्रद्रोह की सुगबुगाहट होते ही उत्पन्न होनेवाले शत्रुओं के ह्वदय से राष्ट्रशत्रुता को सफाया करना या फिर वैसे लोगों को ही सफाया करना चाहिए।

राष्ट्रभक्त कभी भी *'रूपं देहि धनं देहि'* की व्यक्तिगत प्रार्थना नहीं करता। वह तो चाहता है कि उसका राष्ट्र परम वैभव के शिखर पर आरूढ हो। क्या है परम वैभव? इस के लिए शुक्ल यजुर्वेद का एक सुन्दर मन्त्र देखिए-

परमवैभव का स्वरूप

२७. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसि जायतामाराष्ट्रे राजन्यः
शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढा-
नड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठा सभेयो
युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः
पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्योः न ओषधयः पच्यन्ताम्
योगक्षेमो नः कल्पताम्।।   शु.यजुर्वेद- २२/२२

अर्थ- ब्रह्मन् (हे ब्रह्मन् हे प्रभो) आराष्ट्रे (समग्र राष्ट्र में) ब्रह्मवर्चसि (ब्रह्मज्ञानी वेदज्ञ) ब्राह्मणः (ब्राह्मण) जायताम् (उत्पन्न हों) इषव्यः (धनुर्धारी) अतिव्याधी (तीक्ष्ण शस्त्रों को निक्षेप कर सकनेवाले) महारथः शूरः राजन्यः जायताम् (महारथी और शूर क्षत्रिय उत्पन्न हों) दोग्ध्री धेनुः (दुधारू गौवें हों) वोढा

अनड्वान् (भारवाही बैल हों) **आशुः सप्तिः** (शीघ्रगामी घोड़े हों) **पुरन्धिः योषा** (कुशल नारियाँ हों) **जिष्णू रथेष्ठा** (विजीगिषु और रथी) **सभेय युवाः** (सभा के योग्य युवावर्ग हों) **अस्य यजमानस्य** (इस यजमान के) **वीरः जायताम्** (वीर सन्तानें हों) **निकामे-निकामे** (प्रशासन निपुण लोग हों) **पर्जन्यः वर्षतु** (समय समय पर वर्षा हुआ करे) **नः** (हमारे लिए) **फलवत्यःओषधयः पच्यन्ताम्** (फलयुक्त औषधियाँ पककर तयार हों) **नः** (हमारा) **योग-क्षेमः** (अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा) **कल्पताम्** (करने की व्यवस्था करें)

भावार्थ- एक राष्ट्रभक्त प्रभुकी प्रार्थना में किस प्रकार राष्ट्र के परमवैभव की माँग कर रहा है यह अत्यन्त मार्मिक है। अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन करने पर हमें प्रस्तुत मन्त्र में उन तत्त्वों का पता चल जाता हैं जिनसे राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति सम्भव है। भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास, इहलोक व परलोक की उन्नति, क्षात्रतेज व ब्राह्मतेज का समाहार, उत्साह और प्रेरणा का स्रोत एवं राष्ट्रियता तथा राष्ट्रभक्ति का प्रवाह लिए गाए जाने वाले इस मन्त्र को कइयों ने राष्ट्रगीत के नाते स्वीकार किया है। यही तो वैदिक राष्ट्रभक्त की राष्ट्रभक्ति है। इस मन्त्र की व्याख्या में पण्डित सातवलेकर जी कहते हैं "वेद राष्ट्रियता का उपदेश करता है। वेदधर्म राष्ट्रियता से दूर नहीं है"।

राष्ट्र को परमवैभव पर ले जाने के पश्चात् विश्व की स्वीकृति के विना राष्ट्र जगद्गुरु नहीं हो सकता। इसलिए परमवैभवशालीत्व की स्वीकृति विश्व के ज्ञानी जनों से लेना होगा। उनका अनुमोदन अपरिहार्य होता है **"विश्वे एनम् अनुमदन्तु देवाः"** अथर्व. ७/३५/१

ऐसे उच्च विचार व चिन्तनों को स्वीकार कर भारतीय ऋषियों ने विश्वप्रशासन के सिद्धान्तों की भी स्थापना की। केवल सोचकर, लिखकर, या कहकर ही वे मौन नहीं रहे वरन भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान व राष्ट्रचिन्तन को लेकर विश्व के कोने कोने में फैले। हमारे गौरवशाली इतिहास के नायक स्वरूप उग्रतपा व त्यागधन ऋषिगण विश्वविजय के अभियान में निकलने वाले दिग्विजयी वीरों को कहा करते थे-

"यस्मिन् देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थितिः
तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशमुपागतः" याज्ञवल्क्य स्मृति

अर्थात् जिस देशमें जो आचार हैं, जो व्यवहार हैं और जो भी कुलस्थितियाँ

हैं, वह देश तुम्हारा वशीभूत होने पर भी उन्हीं के अनुसार परिपालन करना या शासन चलाना।

राष्ट्रजन में केवल पुरुषों की चिन्ता थी ऐसी बात नहीं, नारी के महत्ता को लेकर भी कई सूक्त बने। वैदिक संस्कृति को नारीद्रोही कहना आज एक फेशन बन चुका है। ''मनुवादी'' जैसे शब्द गाली के अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं। छत्रपति शिवाजी को निर्माण करने का माँ जीजावाई का संकल्प, रणचण्डी का रूप लेकर शत्रुओं के विरूद्ध लड़ने वाली असम की मूलागाभरु, दुर्गावती, लक्ष्मीवाई और ऐसी अगणित वीराङ्गनाओं की विजीगिषा, मीराबाई और ताज बीबी जैसी भक्त प्राण जननियों की भक्तिधारा, अपाला,घोषा, गार्गी व मैत्रेयी सी विदुषियों की विद्वत्ता-ये सभी गुण वेदानुकूल रहे, फिर किस बात में हमारी आपत्ति है? वैसी नारियाँ पैदा हों तो वैदिक समाज आज भी उनकी आरती उतारेगा। कुछ भी हो नारी की महत्ता को दर्शाता हुआ यह वेदमन्त्र देखिए-

२६. ***कतरत् त आहरणि दधिमन्थां परिश्रुतम्***
जायाः पतिं विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः
अथर्व- २०/१२७/९

अर्थ- दधि मन्थां परिश्रुतं कतरत् त आहराणि (दही मथकर निकाला हुआ मक्खन कितना लाऊँ?) **परिक्षितः राज्ञः राष्ट्रे जायाः पतिं विपृच्छति** (परिक्षित् राजा के राष्ट्र में पत्नियाँ पति से पूछती हैं)

भावार्थ- यह अर्थ सायण भाष्यानुसार लिखा गया है। पर इस लक्षणा वृत्ति वाले मन्त्र का वैयाकरणिक विश्लेषण न हो तो आशय स्पष्ट नहीं होगा। अतः हम इसका विश्लेषण करते हैं- **'परिश्रुतम्'** का अर्थ सुना हुआ या सीखा हुआ होता है। **'दधि मन्थाम्'** पद यहाँ लाक्षाणिक है। वेदों में साहित्यिक छटा, लक्षण एवं व्यञ्जनाओं को न जानने के कारण इन्हें न पहचानने वाले इसे गड़ेरिये के गीत समझते हैं। दही मथकर श्रुत या परिश्रुत अर्थात् ज्ञान नहीं निकाला जाता। उस 'मक्खन' को जब **'परिश्रुतम्'** याने ज्ञान कहा गया तो दधि मन्थन का तात्पर्य विचार मन्थन से होता है। पुनः परिक्षितः पद यहाँ राजा परीक्षित के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है क्यों कि इस अर्थ में होता तो ''राज्ञः परीक्षितस्य'' ऐसा बनता। यह शब्द **'परिक्षित्'** है एवं षष्ठी हेने के कारण परिक्षितः हुआ है। यहाँ

परि + क्षि धातु (क्षय करना (शत्रु को)) में तुकागम होकर परिक्षित् शब्द बना है। फिर यहाँ 'जायाः' शब्द बहुवचन में और 'पति' शब्द एकवचन में आया है। अतः 'जाया' शब्द का बहुवचनान्त रूप होने के कारण यहाँ नारी समाज का द्योतक बन रहा है।

इस विश्लेषण के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि-राष्ट्र के प्रबुद्ध नर-नारी बैठकर जब विचारों का मन्थन करते हैं तब स्वच्छ ज्ञान की मक्खन-रूपी भागीरथी प्रज्ञा रूपी गोमुख से निकलती है। ''कतरत् त आहराणि'' अर्थात् 'उसमें से कितना निकालें' का तात्पर्य उस ज्ञान के नवनीत को निकालकर समाज में विखेरना होता है। तब समाज के बौद्धिक स्तर का विचार करते हुए उस ज्ञान का कौन सा भाग कहाँ बाँटें- उसपर गहन विचार हुए। ज्ञान के विषय को लेकर इतना हलचल कहाँ होता है? 'परिक्षितः राज्ञः' अर्थात् सतत् जागरूक होकर शत्रुओं को चारों और से क्षय करनेवाले राजाके (राष्ट्रे) राष्ट्रमें। किसी राष्ट्र के राज्यों में अथवा एकराट् राज्य में यदि वैसे राजा हों तो नर-नारी में ज्ञान चर्चा का निर्मल प्रवाह सतत चलता रहता है। (कई व्याख्याकारों ने यहाँ राष्ट्र शब्द को राज्य के रूप में प्रस्तुत किया है, परन्तु पूर्वापर प्रसङ्ग, मन्त्रों के अनुशीलन आदि के प्रकाश पर देखें तो यहाँ भी राष्ट्र शब्द विशुद्ध आध्यात्मिक तत्त्व बनता है)

लक्ष्मीबाई सी वीराङ्गना की प्रशंसा में अथर्व वेद के १/२७ सूक्त में दिए हुए चार मन्त्र अत्यन्त प्रेरणास्पद एवं मनन योग्य हैं। देखिए उसी सूक्त का चौथा मन्त्र क्या कहता है-

हे दोनों पावों, आगे बढो। प्रस्फुरित हो उठो। सन्तोष देनेवाले घरों के प्रति हमें पहुँचाओ। अपराजिता अलुण्ठिता एवं प्रमूख बनी हुई महारानी सबसे आगे रहे।

इस सूक्त की चर्चा में सातवलेकर जो कहते हैं ''जिस राष्ट्र में स्त्रियाँ भी ऐसी शूर और दक्ष होंगी, वह राष्ट्र सदा ही विजयी होगा, इसमें क्या सन्देह? ऐसी वीर स्त्रियों को क्या कोई हीन समझ सकता है?'' ☐☐

ईश-वन्दना का राष्ट्रिय-स्वरूप

ईश्वर आराधना आत्मिक उन्नतिका सोपान है इसीलिए उसे आध्यात्मिक कहा गया। इसमें साधक साधना करते करते परमात्मा में रम जाते हैं। उनकी आराधना, उनके आत्मा, मन, शरीर और बुद्धि को सन्तुलित, परिष्कृत एवं अग्रगामी बनाते हुए उन्हें पूर्ण बनाती है। आत्मा की वह परिपूर्णता तथा उपासना का यह विशाल दर्शन साधारण जन नहीं जान पाते अतः उपासना की निम्नतम श्रेणी में से तत्त्वमसि की उच्चता तक ले जाने की योजना से "प्रभो मुझे सुख दे, धन दे, ऐश्वर्य दे" जैसी प्रार्थनाएँ अस्वित्व में आईं। उस प्रकार की उपासना में रमते रमते साधक भक्ति रस से सराबोर होता हुआ कहने लगता है-

न धनं न जनं न च सुन्दरीम्
कवितां वा जगदीश कामये
इह जन्मनि जन्मनि चान्तरे
भवतात् भक्तिरहैतुकी त्वयि।।

कामना विहीन यह भक्ति उच्चकोटी की होने पर भी, अपने लिए प्रभु से कुछ भी न माँगकर दूसरों के लिए निवेदन करना जितना महान कार्य है, शायद भक्ति के जगत में उतना महान कार्य कहीं और नहीं मिलेगा। दूसरों के हित के लिए ही तो हमारे ऋषियों, यतियों, सन्यासियों व जनक जैसे राजाओंने भी व्यक्तिगत कामना को जलाञ्जलि दी। अस्थिदान करते समय दधीचि को कितनी शारीरिक पीड़ा हुई होगी? दीवारों में चुनवाए जाते समय गुरु गोविन्द के बच्चों को कितना कष्ट हुआ होगा? आरे से चीरते समय भाई मतिदाष ने कैसी यन्त्रणा सही होगी? परन्तु वे सब कार्य दूसरों के हित के लिए थे, वे हमारे लिए जीए और हमारे लिए ही तो मरे।

वैदिक राष्ट्रिय प्रार्थनाएँ इन्हीं भावनाओं से ओतप्रोत हैं। आइए हम भी इन

प्रार्थनाओं को प्रभु की उपासना में गाया करें।

२७.	युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौः यौ सेतृभिः रज्जुभिः सिनीथ।। ऋग्वेद ७/८४/१

अर्थ- यौ (आप जो इन्द्र और वरुण) रज्जुभिः सेतृभिः सिनीथः (पाश से पापियों को बाँधने में समर्थ हैं) युवो (उस प्रकार के आप दोनों) द्यौ (द्युलोक) राष्ट्रम् (और राष्ट्रको) बृहदिन्वति (पर्याप्त सिञ्चन करते हैं) (अतः हम आपके आभारी हैं)।

भावार्थ- दुष्टों का दलन और साधुलोगों का परित्राण ही ईश्वरीय कार्य है। उसी कार्य से धर्म की संस्थापना और अर्धमका विनाश होता है। वेदों में भी इसी आशय के वहुतेरे सूक्त पाए जाते हैं। दुष्टों की व्याख्या में अथर्ववेद में कई दुर्गुण गिनाए हैं। उनमें से कुछ हैं-

(१) दुर्हार्द (दुष्ट हृदय वाला) १/८/२५, (२) रक्षः (रक्षा करने का ढोंग दिखाकर घात करना) १/८/९ (३) असु-तृप् (दूसरों की हत्या कर आनन्दित होने वाला) १/८/१३ (४) धूर्वन् (हत्यारा) १/८/२१ (५) भंगुरावत् (विनाशक) १/८/२२ (६) यातुधानाः (दूसरों को यातना देने वाला) १/८/२, (७) मिथुना शपातः (अपशब्द बोलने वाला) १/८/१२, (८) द्वयाविन (मन और मुख में अलग अलग बातों का होना) १/२८/१ (९) अघं मूरम् आदधे (पापदृष्टि से ही प्रत्येक कार्य प्रारम्भ करना) १/२८/३ (१०) तमोवृध (अन्धकार याने अज्ञान को बढ़ाने वाले) ८/४/१ (११) अत्रिन् (दूसरों को मारकर निजी स्वार्थ की सिद्धि करने वाले) ८/४/१, (१२) स्तेनः (चोर) ८/४/१० (१३) पिशुनः (चुगलखोर) ८/४/२० आदि आदि।

दुष्टों को नाश करने की अद्भूत् शक्ति को लिए हुए इन्द्र एवं वरुण की प्रार्थना करते हुए भक्त उस शक्ति को मांगना चाहता है। वे दोनों देवता पाशों से पापियों को बाँध सकते हैं। बाँधने का तात्पर्य बड़ा ही मार्मिक है। बँधे हुए वे पापी तीन प्रकार से सुधर सकते हैं-

(१) पवित्रेण पूतम् आज्यम् इव- कुश की छाकनी से छाने हुए घी के तरह। (अन्तः शुद्धि के जरिए)

(२) मलात् स्नात्वा स्विन्नः इव- स्नान के जरिए बाहरी मल को छुड़ाने के समान। (बहिः शुद्धि से)

(३) द्रुपदात् मुमुचान इव- बन्धन से मुक्त हुए पशु के समान (सम्बन्ध शुद्धि से)

दुष्टों को बाँधकर इस प्रकार से सुधारने की योजना से ही वैदिक साधक दुष्टों को बाँधने की सलाह देता है। फिर वह इन्द्र और वरुण की प्रशंसा में द्युलोक व राष्ट्र को वैभव देने के कारण स्तोत्र गाते हुए आभार व्यक्त करता है। राष्ट्र की विशेषता अध्याय में इन्द्र और वरुण के अर्थ देखें।

ध्येय-चिन्तन

ध्येय चिन्तन की शिक्षा के पहले पाठ में पूछा जाता है- हमें खाने के लिए जीना है या जीने के लिए खाना है? विद्यार्थियों से उत्तर मिलेगा- "जीने के लिए खाना है।" यह तो हुई प्राथमिक संकल्पना। फिर प्रश्न उठता है- यदि जीने के लिए खाना है तो जीकर करना क्या? हमें शैशव से जवानी की ओर आगे बढ़ते समय इन विचारों को बद्धमूल बनाने का माध्यम क्या हो? कहाँ के विद्यालय में यह बात पढ़ाई जाती है? शैशव से लेकर पी.एच.डी. करते तक जीवन के २८/२९ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं तो भी ध्येय चिन्तन के पाठ का पहला प्रश्न भी अनुत्तरित ही रहता है। इसीलिए यह शिक्षा शिक्षा ही नहीं है। २८/२९ बर्षों की साधना का फल क्या मिला जब कि हमारे जीने का कारण भी पता नहीं चल पाता है? वैदिक राष्ट्रभक्त को उस कारण का पता चल चुका है इसीलिए तो वह प्रभु से उस कारण की पूर्ति हेतु प्रार्थना करता है-

२८. अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृधे।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभिराष्ट्राय वर्धय।। ऋग्वेद. १०/१७४/१

मात्र एक शब्द के पाठभेद से अथर्ववेद में आया है-

२९. अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभिराष्ट्राय वर्धय।। अथर्व- १/२९/१

अर्थ- ब्रह्मणस्पते (हे ब्रहणस्पते) येन अभीवर्तेन हविषा (जिस वैभवशाली हवि से) (अथर्ववेद के पाठभेद में-येन अभीवर्तेन मणिना (जिस अभीवर्त मणि से) इन्द्रः अभिवावृधे (इन्द्र वृद्धि को प्राप्त हुए) तेन (उसके द्वारा) अस्मान् (हमें) राष्ट्राय (राष्ट्र के लिए) वर्धय (पालन-पोषण कर बड़े बनाओ)।

भावार्थ- ईश्वरीय मणि को धारण करने से अथवा हवि प्रदान करने से इन्द्र वृद्धि को प्राप्त होता है। यह कैसे?

''संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते'' ऋग्वेद. १०/१९१/३

संगठन की तेजस्विता ही तो हवि है। यव, घी, तिल, जौ, अन्य वनस्पतियाँ मिलकर ही हवि का निर्माण होता है। उसी प्रकार अनेक प्रकार के वनस्पतियों, पत्थरों आदि पदार्थों से मणि का निर्माण होता है और इन् +द्र याने दुष्टदलन क्षमता का समावेश होता है या 'इदि परमैश्वर्ये' धातु के अनुसार परम ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। अतः भक्त कहता है ''हे प्रभो! हे ब्रह्मणस्पते! हे नाथ! तेन अर्थात् आप उसी शक्ति को मुझमें स्थापन कीजिए और उस प्रकार की शक्ति से ही मुझे राष्ट्र के लिए पाल पोस कर बड़ा कीजिए।

यहाँ पर 'राष्ट्राय वर्धय' (राष्ट्र हेतु बड़ा कीजिए) ऐसी प्रार्थना ही ध्येय चिन्तन का दर्पण है। वैदिक राष्ट्रभक्त अपने लिए नहीं, राष्ट्र के लिए जीना चाहता है। राष्ट्र के गौरव को बढ़ाने, भौतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से ही राष्ट्र को वैभवशाली बनाने एवं उस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु योजनाओं को स्थिर करना यही उसके कार्य बन जाते हैं। शैशव काल में ही जिसके हृदय में ऐसी उत्कट राष्ट्रभक्ति जगती हो उस राष्ट्र को आगे बढ़ते समय कौन सी शक्ति बाधक बन कर खड़ी हो सकती है? इसीलिए हिमालय की चट्टान को, सागर की गगनचुम्बी उर्मियों को और हृदय की कायरता एवं क्षुद्रस्वार्थ को चीरकर भारतीय वीर पुङ्गवो ने विश्व को ही छान लिया। राष्ट्रभक्ति की धधकती हुई लौ ने उन्हें आगे बढ़ाया और अद्भूत इतिहास का निर्माण करते हुए हमारे राष्ट्र को जगदगुरु बनाया। यही वैदिक राष्ट्रभक्त का ध्येयचिन्तन है।

प्रभु की उपासना में वरण मणि को धारण करते हुए वैदिक भक्त कहता है

३०. इमं बिभर्मि वरणमायुष्मान् शतशारदः।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रञ्च पशूनोजश्च मे दधत्।। अथर्व- १०/३/१२

अर्थ- शतशारदः आयुष्मान् इमं वरणं विभर्मि (मैं सौ शरद् की आयुवाला होने के लिए इस वरणमणि को धारण करता हूँ।) सः मे राष्ट्रं क्षत्रं पशून् ओजश्च

दधत् (वह मुझमें राष्ट्रत्व, क्षात्रतेज जीवन और तेजस्विता को स्थापित करे।)
भावार्थ- (नक्षत्रकल्प १९) का उद्धरण देते हुए सायणाचार्य वरणमणि का अर्थ करते हैं "अयं मे वरणो मणिरिति वारणम् अभयायाम्" अभय से वारण करने वाला होने के कारण उस मणि का नाम वरण मणि है। अनेक रोगों को दूर करनेवाली जड़ी बूटियाँ हमारे पुरखों को ज्ञात थीं। दवाओं के ऐसे नुस्खे वे तैयार करते थे कि खाने से ही नहीं, कुछ ऐसी वनस्पतियाँ धारण करने से भी रोग सैकड़ों कोश दूर भाग जाते थे। वरण मणि रोगों को दूर कर आयुष्य प्रदान करनेवाली ऐसी ही एक वनस्पति है।

वरणमणि से तो "जीवेम शरदः शतम्" की प्रार्थना पूर्ण हो सकती है परन्तु उस दीर्ध जीवन का भी तो उद्देश्य है। वह वैदिक वीर जीने की कामना के अन्तराल के उद्देश्य को स्पष्ट करता हुआ इस वनस्पति से प्रार्थना करता है कि-उसे राष्ट्रतत्त्व, क्षात्रतेज, जीवन और तेजस्विता से राष्ट्र को नन्दन कानन में परिवर्तन करना है। हम राष्ट्रतत्त्व पर विवेचन लिख चुके, क्षात्रतेज पर आगे लिखेंगे अतः यहाँ तेजस्विता की वैदिक धारणा को स्पष्ट करना चाहते हैं।

(१) सिंह, व्याघ्र, प्रदाकु (सर्प), अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, (अथर्व. ६/३८/१)
(२) हस्ति, द्वीपी (तरक्षु या व्याघ्र), हिरण्य, जल, गौ, पुरुष (अथर्व.३/३८/२)
(३) रथ, अक्ष, वृषभ (बैल), वायु, वर्षा (अथर्व- ३/३८/३)
(४) राजन्य, दुन्दुभि, अश्व, पुरुष का पित्त (अथर्व. ३/३८/४)।

इन मन्त्रों में बार बार आया है 'वर्चसा संविदाना सा नः एतु'- अन्य बल से युक्त होकर वह तेज हमें प्राप्त हो।

वरणमणि में उस प्रकार की तेजस्विता देने की क्षमता भी है। अतः प्रकृति के साथ एकात्म होनेवाली भारतीय अन्तर्दृष्टि वनस्पतियों में भी दर्शन करती हुई पाई जाती है। इसलिए वैदिक वीर को खाने के लिए जीना नागवार लगता है। वह शत शरदों की शोभा को विलास हेतु उपयोग नहीं करता।

इसी प्रकार अभीवर्तमणि की याचना करता हुआ एक राष्ट्रभक्त ब्रह्मणस्पति की प्रार्थना करता है।

३१. अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे।। अथर्व- १/२९/४

अर्थ- हे **ब्रह्मणस्पति, सपत्नक्षयणः** (शत्रुओं को नाश करने वाला) **अभिभवः** (दमन करनेवाला) **अभीवर्त मणिः** (सर्वविजेता पुरुष, पक्षान्तर में मणि) **सपत्नेभ्यः** (शत्रुओं को) **पराभुवे** (परास्त करने हेतु) **मह्यं बध्यताम्** (वैसे पुरुष से मेरी मैत्री बना दे, पक्षान्तर में मुझे बाँधो (यह कार्य) **राष्ट्राय** (राष्ट्र के लिए है)

भावार्थ- इस प्रार्थना में भक्त राष्ट्रशत्रु को दिए जाने वाले दो प्रकार के दण्ड की बातें बता रहे है।

(क) जो राष्ट्रद्रोह का नेतृत्व करते हों, आततायी बनकर राष्ट्र को सताते हों, शकुनि के तरह धोखेबाज हों ऐसों को पहचानने और सही तरीके से परीक्षा करने के बाद वैसे ही पाए गए तो उनका विनाश ही कर देना चाहिए।

(ख) यदि कोई छोटे-मोटे दण्ड से ही सही रास्ते पर आनेवाला दिखे तो उसे दमन करना चाहिए।

इन शत्रुओं को परास्त करने के कार्य को सम्पादन करने हेतु वह ब्रह्मणस्पति से वैसे ही वीरपुरूष से मैत्री स्थापना कराने की प्रार्थना करता है। पक्षान्तर में-अभीवर्त मणि बाँध देने की प्रार्थना करता है। यह कार्य भी **'राष्ट्राय'**- राष्ट्र के लिए है। उसमें भक्त का कोई वैयक्तिक स्वार्थ नहीं है। हाँ, राष्ट्र की दुर्दशा में अन्य राष्ट्रजन के समान ही दुःख या वेदना का सहभागी बनना पड़ता तो है परन्तु वह तो राष्ट्र के साथ तादात्म्य बनाया हुआ उच्चकोटि का राष्ट्रसाधक है। इसीलिए तो वह कहता है **''राष्ट्राय''**। इस विषय में पण्डित सातवलेकर बड़ा ही मार्मिक विचार रखते हैं। वे कहते हैं- ''मुझे राष्ट्र के लिए बाँध ताकि मैं राष्ट्र के शत्रुओं का पराभव कर सकूँ''। यह भाव मन में धारण करना चाहिए। मैं राष्ट्र के साथ बाँधा जाऊँ, मेरा अपने राष्ट्र के साथ ऐसा सम्वन्ध जुड़ जाय कि वह कभी न टूटे, राष्ट्र का हित और मेरा हित एक ही बने, मैं राष्ट्र के लिए ही जीवित रहूँ इत्यादि प्रकार के भाव उक्त मन्त्र में हैं। जो जिनके साथ बाँधा जाता है वह उसीके साथ रहता है। यदि स्वराष्ट्राभिमान से मनुष्य राष्ट्र के साथ एकबार अच्छी प्रकार बँध जाय तो वह वहाँ से नहीं हट सकेगा। इसी प्रकार मनुष्य अपने राष्ट्र के साथ बाँधे जाँय और ऐसा परस्पर सम्बन्ध जुड़ने के कारण राष्ट्र में अपूर्व संघशक्ति उत्पन्न हो यह बात वेद को अभीष्ट है।''

एक वैदिक राष्ट्रभक्त अपने इष्ट देव से भी अपने लिए कुछ न माँगकर राष्ट्र के लिए माँग रहा है-और ऐसे में कोई सिरफिरा यह कहे कि- यहाँ तो राष्ट्रियता की भावना ही नहीं रही तो उस मुर्खाधिराज को पागल या फिर मारक विष को अपने में छिपाई हुई पुतना का अवतार ही मानना पड़ेगा। इस देश की सन्तानों को अब सोचने का समय आ गया कि-यह तो सनातन राष्ट्र है और प्रभुने इसे ही अपनी क्रीड़ाभूमि के रूप में चूना। इसे भक्तों ने क्या क्या नहीं कहा- राष्ट्रदेव, माता भूमिः, ओजस्वती जनभृत् आदि आदि।

प्रभु से की गई ऐसी प्रार्थना मेरे प्रभु निश्चित ही सुनेंगे पर हम ऐसी प्रार्थनाएँ नहीं कर रहे हैं। इसीलिए तो स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि **आगामी ५० वर्षों तक अपने सभी देव-देवियों को भूल जाओ, आने वाले ५० वर्षों तक तुम्हारी एकमात्र आराध्या हो भारतमाता।** उन्होंने सभी साधारण जन के लिए यह सन्देश दिया था। □□

राष्ट्र का क्रमविकास

वेदों में कहा गया, यही सृष्टि पहली नहीं है। दिन और रात के तरह सृष्टि, स्थिति और लय होते रहते हैं। इसके लिए यह चक्र समुचित व्याख्या प्रस्तुत करता है-

जिस तरह प्रस्तुत चक्र में कहीं विराम नहीं उसी तरह इस प्रक्रिया का भी विराम नहीं होता। इस सृष्टि के बारे में ऋतम्भरा प्रज्ञा कहती है ''धाता यथा पूर्वम् अकल्पयत्'' पूर्व व्यवस्थानुसार प्रभु ने सृष्टि की कल्पना की (ऋग्वेद। १०/१९०/३)। लय की परिसमाप्ति के बाद निर्दिष्ट समय में प्रभु की सर्जनेच्छा जगती है। देखिए-

''कामस्तदग्रे समवर्तताधि, मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्''

(ऋग्वेद. १०/१२९/४)

अविनाश चन्द्र दासने इस मन्त्र का अनुवाद इस प्रकार किया है-

Desire at first arose in it

Desire which was the earliest seed of spirit.

इस कामना जागृति के बाद प्रभु से विराट् की उत्पत्ति हुई।

ततो विराडजायत विराजोऽधिपूरुषः

स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।। यजु. ३१/५

'उस' से विराट् और विराट् से अधिपुरुष हुआ तब वह उस गतिमान तत्त्व से फटकर अलग हो गया। (पुरः जातः) पहले बनी हुई सी भूमियों के निर्माण हुए। अगला मन्त्र एक के बाद एक तत्त्वों की उत्पत्ति कैसे हुई यह दर्शाता हुआ

कहता है-

तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये।। यजु. ३१/६

उस सर्वहुत एवं यज्ञस्वरूप विराट् से योजनानुसार (आरण्याः) जंगली जानवर व प्रकृति का वन्य स्वरूप, ग्राम, वायु आदि तत्त्व व अन्य जीवों की उत्पत्ति हुई।

विराट् से राष्ट्र की सृष्टि कैसे हुई इस पर चर्चा करते हैं- विराट् से सर्वप्रथम ब्रह्मा की सृष्टि हुई। ''विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरम्'' (अथर्व. ८/९/७) फिर विराट् अपने ही प्रकाश से प्रकाशित हुआ। ''विराट् स्वराजम् अभ्येति पश्चात् (अथर्व-८/९/९) प्रकाश (उषा) के रूप में पैदा होने वाले इस विराट् ने अन्धकार हटाया (अथर्व ८/९/११)। फिर उसने क्रमशः किन किन तत्त्वों को उत्पन्न किया उसकी लम्बी सूची देते हुए अथर्ववेद कहता है (८/१०)

विराड् वा इदमग्र आसीत तस्याः जातायाः
सर्वमविभेदियमेवेदं भविष्यतीति।।१।।
सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत्।।२।।
गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद।।३।।
सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत्।।४।।
यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद।।५।।
सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत्।।६।।
यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद।।७।।
सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ।।८।।
यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद।।९।।
सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत्।।१०।।
यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद।।११।।
सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत्।।१२।।
यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद।।१३।।

....

....

सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या
उपाह्वयन्तेरावत्येहीति।।१०/८/४०

तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम्।।१०/८४/१।।

प्रारम्भ में यह विश्व विराट् था। तत् पश्चात् सभी भयभीत हुए कि यही एक होगा।।१।।

उस विराट् ने जल उत्पन्न किया, तो गार्हपत्य में प्रवेश कर गया।।२।।

यह तथ्य जाननेवाला गृहमेधी, गृहस्वामी बन जाता है।।३।।

फिर वही विराट् तत्त्व उत्क्रम करता हुआ आहवनीय अग्नि में प्रवेश कर गया।।४।।

इस तथ्य का ज्ञाता देवप्रिय होता है और उसके आह्वान पर देवता अभिमुख होते हैं।।५।।

फिर वही विराट् उत्क्रम करता हुआ दक्षिणाग्नि में व्याप्त हुआ।।६।।

इसका ज्ञाता ऋतु दक्षिणीय में निवास करने वाला होता है।।७।।

फिर वही विराट् उत्क्रम करता हुआ सभा में प्रविष्ट हुआ।।८।।

इसका ज्ञाता सभ्य कहलाता है, उसकी सभा में सभी उपस्थित होते हैं।।९।।

फिर वही विराट् उत्क्रम करता हुआ समिति में प्रविष्ट हुआ इसका ज्ञाता सामित्य बनता है, उसकी समिति में।।१०।।

सैनिक आते हैं।।११।।

फिर वही विराट् उत्क्रम कर आमन्त्रण में प्रविष्ट हुआ।।१२।।

उसका ज्ञाता निमन्त्रित करने योग्य होता है, उसके आमन्त्रित करने पर सभी उपस्थित होते हैं।।१३।।

विस्तार भय से सभी मन्त्र न देकर मात्र यहाँ विराट के उत्क्रम की सूची देते हुए आगे हमारे विषय तक पहुचेंगे।

वह अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हुआ ८/१०/१४

फिर वह वनस्पतियों में प्रविष्ट हुआ ८/१०/२४

वह फिर उत्क्रम करता हुआ पितरों के पास पहुँचा ८/१०/२६

उसके बाद देवों के पास उसने उत्क्रमण किया ८/१०/२८

अनन्तर वह उत्क्रम करता हुआ मनुष्य के पास पहुँचा और हनन करने पर

तुरन्त प्रकट हुआ ८/१०/३०
वह विराट् पुनः उत्क्रमण करता हुआ असुरों के समीप गया ८/१०/३२
उसने दुबारा पितरों के पास उत्क्रमण किया ८/१०/३६
यह विराट् उत्क्रमण करता हुआ मनुष्यों के पास पहुँचा। मनुष्यों ने उसे बुलाते हुए कहा "इरावती आओ" अथर्व-८/१०/४०
तब विवस्वान पुत्र मनु उसके वत्स हुए और भूमि उसका पात्र बनी। अथर्व- ८/१०/४१

भूमि के विराट का पात्र बनने के पश्चात् ही भूमि की महत्ता आँकी गई तथा उसे मातृत्व प्रदान किया. गया और राष्ट्रोत्पत्ति के सिद्धान्त में कहे अनुसार इस भूमि पर राष्ट्र अस्तित्व में आया। □□

राष्ट्र और गोरक्षा

राष्ट्र में गोरक्षा का महत्त्व क्या है इस विषय पर आने से पहले हम एक तथ्य देना चाहते हैं कि संहिता ग्रन्थों में राष्ट्र शब्द के साथ ११ मन्त्रों में गोवाचक शब्द आए हैं। हम उनमें गोरक्षा सम्वन्धित कुछ मन्त्रों की व्याख्या करेंगे। उसके पहले गोरक्षा पर वैदिक दृष्टिकोण एवं इतिहास को स्पष्ट करना चाहते हैं।

भारत की राष्ट्रिय अस्मिता को कुचले जाने के अंग्रेजी प्रयास के इतिहास में तोड़-मरोड़ कर तथ्यों को प्रस्तुत किया गया। उन्होंने भारतीय ऋषियों को गोमांस भक्षक कहकर लांछन लगाया और दुर्भाग्य से स्वाधीन भारत के इतिहास जगत में भारत और भारतीय संकल्पना से दूर तथाकथित इतिहासविदों का नंगा नाच चला। उन्होंने गो-हत्या को वैदिक धर्म कहने की धृष्टता तक दिखाई।

वेदों के जिन मन्त्रों में गौ के लिए ''अघ्न्या'' (न हननीया) शब्द आया है उसकी सूची इस प्रकार है-

ऋग्वेद- ८/१०२/१९, १/२५४/६

यजुर्वेद- १२/७३

अथर्ववेद- ५/१८/१,१०/९/३,१०/१०/१, १०/४६/३ आदि।

इसी दृष्टि को सामने रखकर महाभारत कहता है-

'अघ्न्या इति गवां नाम क एनां हन्तुमर्हति' (महाभारत शान्तिपर्व २६२/४७) अर्थात् गौ तो अघ्न्या है, कौन इसे मारने का हक रखता है? ऋग्वेद कहता है-

माता रूद्राणां दुहिता वसूनाम्

स्वसादित्यानाम् अमृतस्य नाभिः

प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय

मा गाम् अनागाम् अदितिं वधिष्ठ।। ऋग्वेद. ८/१०१/१२

''रूपायाघ्न्ये ते नमः'' ऋग्वेद १/१५४/६ आदि कई मन्त्र गाय को अघ्न्या के रूप में प्रस्तुत करते हुए पाए जाते हैं। विस्तार भयसे हम रामायण, महाभारत, पुराण एवं अन्य साहित्य के वर्णन में जाना नहीं चाहते।

तात्पर्य यह है कि-भारतीय सांस्कृतिक धारा में गौ को अघ्न्या ही नहीं पूज्या भी कहा गया है। आज के परिप्रेक्ष में शंकराचार्य स्वामी चिन्मयानन्द सरस्वती ने सत्य ही कहा है, 'आर्यभूमि, हिन्दुभूमि, वैदिकभूमि, देवभूमि, यज्ञभूमि, कर्मभूमि, अवतारभूमि- इस भारत में गोवंश की उपेक्षा और हत्या महान आश्चर्य और अपराध है। यह स्पष्ट ही लोकहत्या है। गोहत्या स्वतन्त्र भारत के लिए दुर्भाग्यपूर्ण अभिशाप है।''

आइए, वेदमन्त्रों में राष्ट्र के साथ गौ के सम्बन्ध को देखें-

३२. यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममपपद्यमानाम्।
सा ब्रह्मजाया वि-दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान्।।
अथर्व. ५/१७/४

शश उल्कुषीमान् (उल्का वाले शश के तरह) ग्रामम् अपपद्यमानाम् (गाँव की ओर आती हुई), विकेशी इति तारका आहुः (दुर्गति लाने वाली तारका कहते हैं), सा यत्र प्र अपादि (वह जहाँ गिरती है) (उस स्थान को) वि-दुनोति (नष्ट करती है) (उसी तरह) ब्रह्मजाया (अपहृता गौ) राष्ट्रं वि-दुनोति (राष्ट्र को ही नष्ट कर देती है)।

३३. नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमाशये
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या। अथर्व. ५/१७/१२

अर्थ- यस्मिन् राष्ट्रे (जिस राष्ट्र में) ब्रह्मजाया (गौ) अचित्या (मोह में डालकर) निरुध्यते (रोक ली जाती है) अस्य (इस राष्ट्र की) शतवाही कल्याणी जाया (शत शत कल्याण कारी गुणों को धारण करलेवाली महिला भी) तल्पं न आशये (पलंग पर नहीं सो पाती है)

३४. न विकर्ण पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या।। अथर्व. ५/१७/१३

अर्थ- यस्मिन्.........चित्या (जिस राष्ट्र में गौ को मोहित कर रोका जाता है)

तस्मिन् वेश्मनि (उस राष्ट्र के घरों मे) विकर्णः पृथुशिरा (सुन्दर कान वाला और विशाल भाल वाला सन्तान) न जायते (पैदा नहीं होता)

३५. नास्य क्षत्ता नीष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः। यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या।। अथर्व. ५/१७/१४

अर्थ- यस्मिन राष्ट्रे......चित्या (जिस राष्ट्र में गौ को मोहित कर रोका जाता है) अस्य क्षत्ता (उस राष्ट्र का सारथी भी) निष्कग्रीवः (गले में निष्क धारण कर) सूनानाम् अग्रतः न एति (घोड़ों के सामने भी टिक नहीं सकता)।

३६. नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरियुक्तो महीयते। यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या।। अथर्व. ५/१७/१५

अर्थ- यस्मिन् राष्ट्रे.......चित्या (जिस राष्ट्र में गौ को मोहित कर रोका जाता है) अस्य (उस राष्ट्र के) कृष्णकर्ण (काले कान वाला) श्वेत (सफेद बैल या अश्व) धुरियुक्त (धुरे में जूतकर भी) न महीयते (प्रशंसा को प्राप्त नहीं होता)

३७. नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिलम्। यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या।। अथर्व. ५/१७/१६

अर्थ- यस्मिन् राष्ट्रे.......अचित्या (जिस राष्ट्र में गौ को मोहित कर रोकी जाती है) अस्य क्षेत्रे (उस राष्ट्र के किसी भी स्थान में) पुष्करिणी न जायते (पुष्करिणी नहीं रहती) आण्डीकं विसम् (अण्डे के आकृति का कमल याने पद्मकन्द भी नहीं होते)।

३८. नास्मै पृश्निं वि-दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते। यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या।। अथर्व. ५/१७/१६

अर्थ- यस्मिन् राष्ट्रे.......अचित्या (जिस राष्ट्र में गौ को मोहित कर रोका जाता है) ये यस्या दोहम् उपासते (जो दोहन का कार्य करते हैं वे) अस्मै पृश्निं न वि-दुहन्ति (अपने गाय का दोहन भी कर नहीं कर पाते)।

भावार्थ- इस प्रकरण में ३३ से ३८ तक आए हुए इन वेदमन्त्रों में आया है "यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या"। तात्पर्य यह है कि वेदों ने गौ को ब्रह्म की पत्नी के नाते स्थान दिया।

द्वितीयतः गायों को मुक्तरूपेण घूमने की स्वतन्त्रता भी दी। गौ की इस स्वतन्त्रता को हनन करने पर सर्वनाश की चेतावनी भी दी है ।

(१) दुष्ट कर्म के कारण कल्याणमयी माताएँ अशान्त हो उठती हैं। इससे

परिवार में कलह होता है और परिवार अस्त-व्यस्त हो जाता है।
(२) माताओं के असन्तोष से अभिशप्त परिवार में गर्भावस्था में योग्य संस्कार न पाने के कारण सुन्दर और बड़े भाग्यवाली पृथुशिरा सन्तानें उत्पन्न नहीं होती हैं।
(३) गौ के अभिशाप से राष्ट्र में रहने वाले सभी लोगों की नैतिकता गिर जाती है और लोग अपने अपने कार्य की दक्षता भी खो बैठते हैं।
(४) गौ के श्राप के कारण राष्ट्र की प्रकृति ही श्री हीन हो जाती है, पुष्करिणियों के अभाव में पानी का अभाव होता है।
(५) बैल भी सही तरीके से कृषिकार्य में सहयोग नहीं देते। धूरे पर जूते जानेपर भी वे कार्य में प्रेरित नहीं होते।
(६) गौएँ अनुभूतिशील होती हैं। अतः किसी की दुधारू गाय भी गौ अपहरण की घटना से क्षुब्ध होकर दूध देना ही बन्द करती है।

३९. ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभिविजङ्गहे।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा।। अथर्व. ५/१९/४

अर्थ- यावत् (जब तक) सा पच्यमाना ब्रह्मगवी (पककर मरती हुई गौ) अभिविजङ्गहे (फड़फड़ाती है) (उस राष्ट्र में) राष्ट्रस्य तेजो निर्हन्ति (राष्ट्रिय तेजस्विता मर जाती है) वृषा वीरः न जायते (शक्तिशाली वीर्य की वर्षा करने वाला वीर भी उत्पन्न नहीं होता)।

भावार्थ- त्रिकालज्ञ और ऋतम्भरा प्रज्ञा के अधिकारी वे आर्य ऋषि आज हो रहे पानी के झगड़ों को "आपः शान्तिः" और अन्तरिक्षों के हमलों को "अन्तरिक्षं शान्तिः" कहकर अपनी त्रिकालज्ञता को व्यक्त करते हैं। यहाँ पर गायों को जीते जी यन्त्रणाएँ दी जाने वाले मन्त्रों को देखकर तो लगता है- मानों अलकबीर और देवनार कत्लखानों को देखने के पश्चात् उनकी वाणी से यह मन्त्र निकला हो क्यों, कि २०० डिग्री सेण्टिग्रेड के गरम पानी को जीवित गाय पर डालकर नरम चमड़े की उत्पाद हेतु उसे छड़ी से पीटा जाता है । गाय मर गई तो चमड़ा मोटा होगा इसलिए मरने को न देते हुए उसके रक्त को निकालने हेतु उसका हलाल किया जाता है। रक्त के निकलने के बाद उसके पेट में एक छेट बनाकर हवा भराई जाती है और चमड़ा उतारा जाता है। तब तक गाय को मरने नहीं दिया जाता। फिर उसे काटा जाता है। उस समय

गौएँ कितनी फड़फड़ाती होंगी,इसकी कल्पना करने पर हृदय काँप उठता है। गोपाल के इस देश में गोहत्या के नृशंसता को देखते हुए शायद राम और कृष्ण भी आँसू बहाते होंगे। जिस गौ को उपमा विहीन कहकर ऋषियों ने गीत गाए गोस्तु मात्रा न विद्यते (यजु.२३/४८), कुछ वर्षों पहले कौटिल्य ने भी कहा, है कि-राजा गोरक्षा पर पूर्ण ध्यान दे, (२/२६) उस गोवंश की हत्या पूर्णतया वेदविरुद्ध और विनाशकारी है। गो वंश को बचाने हेतु जिन पृथ्विराज चौहान ने मुहम्मद गोरी से परास्त होना भी स्वीकार किया उनकी आत्मा आज क्या कहती होगी?

इसीलिए तो हम अपनी विश्वगुरुत्व की तेजस्विता को खो चुके हैं।

''एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः

''स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्याः सर्वमानवाः'' कहकर विश्व को ही सभ्य और शिक्षित करने का बीड़ा उठाने वाले हम भिखारी हुए, नैतिक आचरणों से स्खलित होने लगे और विड़म्बना से गोरक्षा के विषय को साम्प्रदायिक कहने लगे।

४०.	***अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा अपरा उर्वरा वशे।*** ***तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम्।। अथर्व- १०/१०/८***

अर्थ- वशे त्वम् अपः धुक्षे (हे गौ तू जल देनेवाली है) अपरा उर्वरा (फिर उर्वराशक्ति की प्रदात्री है)। वशे तृतीयं त्वं राष्ट्रम अन्नं क्षीरं धुक्षे (हे गौ तृतीयतः तुम राष्ट्र प्रदान करती हुई अन्न और दूध भी देती हो।)

भावार्थ- गौ के महत्व के बारे में सायणाचार्य अथर्ववेद के दशम काण्ड के सूक्त के प्रारम्भ में स्पष्ट रूप से कहते हैं- **''वशा न केवलं मेध्यमांसात्मिका गौर्भवति अपितु सा विशसनादनन्तरं महती काचित् देवी भूत्वा देवेषु मध्ये सर्वात्मिका भवति, यज्ञियेषु च यज्ञिया भवति इत्यादि तस्या माहात्म्यं प्रशंसा चोक्ता।''**

अर्थात् 'वशा केवल मेध्यमांसात्मिका (मेद और मांस वाला) गौ ही नहीं होता है, वरन् वह विशसन अर्थात् मृत्यु के पश्चात् एक बड़ी भारी देवी बनकर देवताओं में सर्वात्मिका होती है, यज्ञियों में यज्ञीया बन जाती है। इस प्रकार उसकी प्रशंसा और माहात्म्य यहाँ कहा जाता है।' यज्ञीया का अर्थ यजनशक्ति है। गौ हमें क्या क्या देती है उसका वर्णन करता हुआ यह मन्त्र

कहता है-

(१) 'त्वम् अपः धुक्षे' याने तुम पानी देती हो। यहाँ केवल पीने के पानी के बारें में नहीं बताया गया,यहाँ तो अन्न के साथ सम्बन्धित होने के कारण सिंचाई को दृष्टि में रखकर कहा गया। गोघृत के प्रयोग से वृष्टि यज्ञ करना एवं पर्याप्त पानी बरसाने की वैदिक विधि सम्पादित करने की प्रथा प्राचीन काल में थी। आज भी कइयों ने ऐसे प्रयोग दिखलाए। (देखिए.पण्डित रघुनन्दन शर्मा द्वारा लिखित वैदिक सम्पत्ति पृष्ठ ६५४ से ६५६)। अतः पानी का मूल वृष्टि,वृष्टि का मूल यज्ञ,यज्ञका मूल गोघृत और गोघृत का मूल गौ होने के कारण ही गौ को पानी देनेवाली कहा गया।

(२) "अपरा उर्वरा" भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाने वाली कहकर मन्त्र में गोवंश का सही मूल्याङ्कन किया है। भारतीय गोवंश-रक्षण-संवर्धन परिषद के अध्यक्ष पुरूषोत्तम दास झुनझुनवाला लिखते हैं, "गोबर में ऐसी क्षमता है कि यदि कूड़े कचरे के ढेर पर गोबर का घोल बनाकर डाला जाय तो वह कूड़ा-कचरा तीन-चार माह में उपयोगी खाद बन जाता है। गोवर्धन केन्द्र पुसद (यवतमाल) में इसका सफल प्रयोग करने से ज्ञात हुआ कि एक किलोग्राम गोबर से तीस किलोग्राम उपयोगी खाद तैयार हुई।" (गोसेवा अंक,गीताप्रेस, पृ-२००।) भूमि की शुद्धता, उर्वरा शक्ति एवं प्रदुषणहीनता के गोमुत्र के खाद की आज माँग बढ़ने लगी है।

(३) तृतीयतः वह राष्ट्र प्रदात्री है। प्रस्तुत ग्रन्थ के राष्ट्रत्व के उपादानों को देखें तो पता चलता है कि उनमें से बहुत सारे उपादान गव्यों के प्रयोग से मनुष्य में आधान हो सकते हैं। अतः गौ को राष्ट्रत्व प्रदान करने वाली कहकर वेद ने योग्य सम्मान ही दिया है। अन्न और दूध देनेवाली कहना तो साधारण जन के समझमें भी आता है, अतः हम इसका विस्तार नहीं करेंगे।

४१. ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च।
यशश्च वर्चश्च द्रविणं च।। अथर्व-१२/५/८

अर्थ- ब्रह्म (ब्राह्मतेज) क्षत्रम् (क्षात्रतेज) राष्ट्र, विशः (प्रजा) त्विषि (तेजस्विता) यश;वर्च (सम्पन्नता) द्रविण (धन)

भावार्थ- इस मन्त्र के भाव की पूर्णता हेतु इसके पहले आए हुए पाँचवें मन्त्र को जोड़ना होगा। वह मन्त्र इस प्रकार है-''**तामाददानस्य ब्रह्मगवी क्षत्रियस्य**'' उस ब्रह्मरूपिणी गौ को चुराने वाले क्षत्रिय के ब्राह्मतेज, क्षात्रतेज, राष्ट्रत्व, उसके प्रति बनी हुई जनता की निष्ठा, तेज, यश, सम्पन्नता और धन 'अपक्रामति' नष्ट होते हैं। यह क्रिया पद छठे मन्त्र से है।

क्षत्रिय 'रक्षक' होता है। जब रक्षक ही भक्षक बन जाता है तो जनता में आक्रोश भड़क उठता है और जनता का अभिशाप उसके जीवन को जला डालता है।

गोरक्षा की वैदिक मान्यता के निर्वहन का भारतीय इतिहास

गोरक्षा की वैदिक मान्यता के निर्वहन का भारतीय इतिहास बड़ा ही लम्बा-चौड़ा है। इसलिए हम उसे सूत्ररूप में समेटना चाहते हैं-

(१) त्रेता युग में रामचन्द्र के पूर्वज राजा दिलीप बड़े गोभक्त थे। गोरक्षा हेतु प्राणों को भी विसर्जन देने का संकल्प करने वाले दिलीप के इतिहास को कालिदास ने रघुवंश में उतारा है।

(२) द्वापर में श्री कृष्ण की गोसेवा सर्वजनविदित है।

(३) पृथ्वीराज चौहान की हार इसलिए हुई कि-जयचन्द्र के परामर्श से मुहम्मद गोरी ने अठ्ठारहवें आक्रमण में गौओं को आगे किया और पृथ्वीराज पर चढ़ाई की। गौओं के मारे जाने के भय से उन्होंने शस्त्र नहीं उठाया और उन्हें अफगनिस्तान में ले जाकर मारा गया।

(४) Fundamental Unity of Hinduism नामक ग्रन्थ में बदायुनी के सम्बन्धमें V.A.Smith लिखते हैं "Stringent restriction on the eat of flash, meat, imposed by a series of enactments seen to have been mainly due to own influence, though the idea of Hindu ascentis, may also have played a part as Badauny suggests". (page-350)

(५) जहाँगीर ने भी अपने शासन काल में गोहत्या पर पाबन्दी लगाई थी।

(६) Truth नामक समाचार पत्र ने २०/१/७३ की सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा-, In the 15th century the question was so acute that a

ruler,like Babar had to enjoy on his successors the duty,to stop cowkilling so as not to hurt the feelings of his Hindu subjects. As late as the 18th century Hyder Ali, the most powerful ruler of Mysore, issued a firman that anybody discovered killing a cow would have his hands cut off."

(७) छत्रपति शिवाजी महाराज तो अपने में गो भक्त थे।

(८) गुरु गोविन्द सिंह कहते थे,

> ''यही देहु आज्ञा तुर्क गाहै खपाऊँ
> गऊ घातका दोष जग सिउ मिटाऊँ''

(९) रूस्तम खाँ (बाद में वे रसखान बने) ने गाया-

> ''जो पशु हौं तो कहा बसु मेरो
> चरौं नित नन्द की धेनु मझारन''

भारत के इतिहास में तो ऐसे अगणित उदाहरण मिलेंगे जिनमें गोरक्षा हेतु, वीरों ने आहुतियाँ दीं, आचार्यों ने उपदेश दिए, ग्रन्थों ने मार्गदर्शन दिया एवं जनता ने उन्हें जीवन में उतारा।

१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर गौ माता की हत्या के कारण पैदा हुए विद्रोह का ही फल था। २९ मार्च १८५७ के दिन बंगाल के बेरकपुर छावनी में मंगल पाण्डे गरज पड़े-''हम गौ माता के भक्त सनातन धर्मी हैं। चर्बी लगे अपवित्र कारतूसों को छूकर अपना धर्म भ्रष्ट कदापि नहीं करेंगे''। प्रतिक्रिया में सर्जेण्ट मेजर हौसन ने उन्हें गिरफ्तार करने को कहने पर भी किसी भारतीय सैनिक ने पग नहीं बढ़ाए। मंगल पाण्डे ने उसे वहीं पर भून डाला। आवाज सुनकर लेफ्टिनेण्ट बॉम वहाँ आ पहुँचा उसका भी वही हस्र हुआ। ८ अप्रैल १८५७ को मंगल पाण्डे को फाँसी पर लटका दिया गया। यही १८५७ के समर की पहली आहुति थी। इसके बाद विहार केसरी कुँवर सिंह का बलिदान, १८७१/७२ के कूका विद्रोह, गान्धीजी, तिलक जैसी विभूतियों के गोरक्षा के प्रयास, ऐसी कई घटनाएँ अंग्रेजी शासन की कालावधि में घटित हुईं।

भारत की अन्तरात्मा अपने लाड़लों के शासन में और भी काँप उठी। १९३७ में शंकराचार्य कृष्णबोधाश्रमजी महाराज के नेतृत्व में किया गया आन्दोलन, १९४९-५० में रामराज्य परिषद द्वारा परिचालित आन्दोलन में बीस हजार लोगों

की जेलयात्रा, १९५२ मे राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघ द्वारा दो करोड़ लोगों के हस्ताक्षर संग्रह, १९५४-५५ के कलकत्ता, मुम्बई, अहमदावाद एवं दिल्ली में अखिल भारतीय गोरक्षार्थ अहिंसात्मक धर्म-युद्ध- समिति के तत्वावधान में ६० हजार लोगों की जेल यात्रा, गो भक्त ओजस्वी और विद्वान हिन्दु नेता रामचन्द्र वीर का ६० दिन का अनशन व्रत, अखिल भारतीय धर्मसंघ के तत्वावधान में १८ अक्टूबर १९६२ को देवनार कत्लखाने को बन्द करने की मांग में अपार जनसमूह का मुम्बई कूच, १९६६ के मार्च से दिल्ली में महात्माओं के द्वारा किए गए आन्दोलन, १९६६ के ७ नबम्बर का गो कुम्भ (इस आन्दोलन में सरकार द्वारा बरती गई क्रुरता को बिहारीलालजी टाटिया ने इन शब्दों से व्यक्त किया है-," जालियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड भी इसके सामने फीका पड़ गया, संसद भवन की सड़कें क्षत-विक्षत शवों तथा रक्तपात से पट गईं। सरकार ने अपना पाप छिपाने के लिए कर्फ्यू लगाकर सारे शवों को विद्युत् भट्टि में जला दिया"। (गोरक्षा आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास, गो सेवा अंक कल्याण पृ.३५४) और इसी सिलसिले में आचार्य बिनोवा द्वारा प्रारम्भ किया गया और आजतक चलता हुआ कुख्यात देवनार कत्लखाने के विरोध का सत्याग्रह ऐसी स्वाधीन भारत की घटनाएँ हैं जिसे सोचकर भारतीय अन्तरात्मा सिहर उठती है। यह तो इस इतिहास का केवल एक झलक भर है। हम विस्तार भय से इस विषयको यहीं विराम देते हैं। ☐☐

विवाह और राष्ट्रियता

वेदों ने विवाह को कोरा सामाजिक अनुवन्ध नहीं माना इसे तो संस्कार का नाम दिया गया। केवल कामना की पूर्ति हेतु विवाह नहीं होता क्यों कि- वि-वह् + घञ् (विशेष प्रकार के कर्तव्यों के निर्वहन हेतु किए कार्य का भाव) होने के कारण यह एक विशेष तात्पर्य को दर्शाता है। यहाँ पति पत्नी के युगल को यज्ञ सम्पादन में अपरिहार्य माना गया और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की साधना में एक दूसरे को परिपूरक माना। इसीलिए यहाँ पाणि ग्रहण की प्रथा चली। ऋग्वेद का १०/८५ समग्र सूक्त ही विवाह-के दर्शन की व्याख्या करता है। देखिए (इनके अनुवाद गोविन्द झा के हैं । नारी अंक कल्याण पृ. २०७)

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्
मया पत्या जरदष्टिर्यथासः
भगोर्यमा सविता पुरन्धिः
मह्यं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवाः

अर्थ- जीवन के इस पूण्य पर्व में धरता हूँ मैं हाथ
रहो सुहागभरी चिर दिन तुम सुभगे मेरे साथ।
सुन्दरि तुमसे मुझे मिलाया है देवों ने आज
तुमको देता हूँ मैं अपने गार्हपत्य का राज।।

अमोहमस्मि मा त्वं
मा त्वमस्यमोऽहम्
सामाहमस्मि ऋक् त्वं
द्यौरहं पृथिवी त्वम्।।

अर्थ- तुम लक्ष्मी हो मैं तो अब तक था लक्ष्मी से हीन
सचमुच तुम लक्ष्मी हो मैं था बिना तुम्हारे दीन
सुभगे। तुम हो ऋचा वेद की मैं हूँ स्वरका लास
तुम हो सुजला सुफला धरणी मैं निर्मल आकाश।।

तावेहि विवहावहै सह रेतो दधावहै
प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्।।

अर्थ- आओ बाँधें प्राण परस्पर ले विवाह का सूत
दें दुनियाँ को मिलित शक्ति से रचकर कई सपूत।।

ते सन्तु जरदष्टयः सम्प्रियौ
रोचिष्णू सुमनस्यमानौ
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरद शतं
ऋणुयाम शरदः शतम्

अर्थ- हम दोनों सुन्दर छवि लेकर रहें प्रेम में मग्न
दोनों के मानस हों मङ्गलमय भावों में लग्न।
देखें शत शरदों की शोभा, जिएँ सुखी सौ वर्ष
सुनें कोकिलों के कलरव में सौ वसन्त के हर्ष।।

पाणिग्रहण के अवसर पर की जानेवाली यह प्रतिज्ञाएँ वैदिक दृष्टि को स्पष्ट करती हैं। वैदिक गृहस्थ क्यों विवाह करता है?

(१) सौभगत्वाय- "सुन्दर, सुशील और सुयोग्य सन्तानों को जन्म देने के लिए" ही एक वैदिक युवक विवाह करता है। वह वासना का कीड़ा नहीं, वह तो धर्म और आचार को पालन करने हेतु ही विवाह करता है।

(२) गार्हपत्याय- गृहस्थ धर्म के पालन हेतु विवाह कर पञ्च-महायज्ञों का सम्पादन, श्राद्धादि पवित्र कृत्य,पूर्वजों की थाती के संरक्षण व संवर्धन के लिए पालन किए जाने वाले गृहस्थ धर्म,याग-यज्ञादि,सत्सङ्ग, कथा आदि के लिए वह विवाह करता है।

(३) पति-पत्नी के एकत्व की अनुभूति हेतु कहा गया वधु ऋचा है तो वर साम है, वर द्युलोक है तो वधु पृथिवी है। उस तरह पति-पत्नी में एकात्मता रखते हुए धर्मसाधना ही वैदिक विवाह का उद्देश्य है।

(४) सन्तान जन्म देकर 'प्रजनयावहै' समाज की सेवा के लिए अर्पण करने की मानसिकता प्रमुख रूप से रही। इसे विवाह का अन्यतम कारण माना गया।

(५) सुन्दर मन से सांसारिक साधना में रत होते हुए मर्यादानुकूल और धर्मनियन्त्रित अर्थसाधना व कामसाधना के पालन से शत शरदों की शोभा को

देखते हुए, उसके लास्य को सुनते हुए सौ वर्षों की आयु जीने की आदर्श परम्परा का निर्वहन करने हेतु ही वैदिक युवक विवाह करता है। एक अन्य मन्त्र में वर वधु से कहता है ''गार्हपत्याय जागृहि'' ऋग्वेद १०/८५/२७ 'गृहस्थ धर्म में तुम सतत जागरूक रहना'।

इस चिन्तन के कारण विवाह की हुई महिला की इच्छा सुनिए-

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।। अथर्व-

हमने इस मन्त्र का अनुवाद इस प्रकार किया-

मेरे पुत्र बनें अनन्त गुण के मारें रणों में अरि
पुत्री हो गुण-रूप से वचन से तेजस्विनी सुन्दरी।।
मैं सर्वत्र घुमूँ तथा विजय का डंका बजाती चलूँ
पृथ्वी में पतिदेव का यश रहे हे देव ऐसी बनूँ।।

वर-वधु को राष्ट्रियता का उपदेश

विवाह एक संस्कार होने के कारण आध्यात्मिक, वैयक्तिक और सामाजिक उपदेशों के साथ राष्ट्रिय उपदेश भी दिए जाते थे। इसका एक उदाहरण देखिए-

४२. अभिवर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ।। अथर्व. ६/७८/२

अर्थ- इमौ (ये दोनों वर-वधु) **पयसा अभिवर्धताम्** (दूध आदि से वृद्धि को प्राप्त हों) **राष्ट्रेण अभिवर्धताम्** (राष्ट्रत्व से भी ये आगे बढ़े) **सहस्रवर्चसा रय्या** (अपरिमित तेजस्वी धन से) **अनुपक्षितौ स्ताम्** (पूर्णकाम रहें)।

भावार्थ- वर-वधु को आशीर्वाद देता हुआ वैदिक ऋषि ने मनुष्य जीवन के साध्य और साधन की ओर संकेत किया है। इस मन्त्र में शारीरिक और मानसिक प्रगति के साधनों के साथ-साथ राष्ट्रिय ध्येय भी प्रदान किया गया।

(१) शारीरिक प्रगति हेतु दूध,दही,घृत जैसे द्रव्य ही वैदिकों को अभीष्ट थे। इसलिए **''पयसाभिवर्धताम्''** कहकर वे वर-वधु को आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

(२) मानसिक सन्तुष्टि हेतु अपरिमित तेज से युक्त धन का आशीर्वाद देते हुए

वर-वधु को उत्साहित किया जाता था।
(३) साध्य चिन्तन कराते हुए श्रेष्ठ,ज्येष्ठजन उन्हें राष्ट्रत्व को स्वीकार कर वृद्धि को प्राप्त होने का आशीर्वाद भी प्रदान करते थे 'राष्ट्रेण अभिवर्धताम्'।

इस मन्त्र की व्याख्या में श्रीपाद दामोदर सातवलेकर कहते हैं "दोनों वर और वधु अपने राष्ट्र के साथ रहकर आगे बढ़ें।"
("हिन्दू विवाह का पवित्र स्वरूप और महत्व" गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित पृ. ७१ से)

जब इस विश्व में आजतक भारतेतर देशों में विवाह को कहीं Social contract माना तो कहीं मानव की कामतृष्णा को बुझाने का माध्यम समझा गया वहीं हमारे यहाँ विवाह को धर्म-साधना का अपरिहार्य अंग माना गया। इसीलिए तो यहाँ पर धर्माश्रित अर्थ और धर्माश्रित काम (दूसरे शब्दों में धर्म-नियन्त्रित अर्थ और धर्मनियन्त्रित काम) की संकल्पना उभर कर सामने आई। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं

"धर्माविरूद्धो कामोऽस्मि लोकेऽस्मिन् भरतर्षभ"।।

इन्हीं चिन्तनों के कारण यहाँ पर कहा गया

"पिता स्वर्ग पिता धर्म पिता हि परमं तपः"

दूसरी ओर England के communist Menifesto में कहा गया, "A child is nothing but the result of the sexual enjoyment between two parents."

तात्पर्य यह हुआ कि माता-पिता सन्तान पैदा करने वाले मशीनों से अधिक कुछ नहीं हैं।

हम अपने सांस्कृतिक धरोहर को पहचानें,संस्कृति में स्थित राष्ट्रभाव को अपने में आधान करें "वसुधैव कुटुम्बकम्" तथा "श्रण्वन्तु विश्वेऽमृतस्य पुत्राः" की धवल किरणों को धरा धाम में बिखरे दें- यही वैदिक परम्परा की आकांक्षा है। ◻◻

राज्योत्पत्ति का सिद्धान्त

प्रथम ईश्वरीय अमैथुनी सृष्टि के पश्चात् विश्व में ऋत, सत्य, धर्म आदि का प्राधान्य रहा।उसमें शासन और शासक जैसे कोई तत्त्व नहीं थे। 'राष्ट्र' भी अस्तित्व में नहीं आया था। उस स्थितिको वैदिक साहित्य ने 'वैराज्य' कहा। उसके अर्थ विद्वानों ने इस प्रकार लगाया है-

(१) हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण में पण्डित सातवलेकर जी द्वारा लिखित वैदिक राज्यशासन में पृ.३४९ में दिया गया है- ''विगत-राजकम् इति वैराज्यम्'' जहाँ राजा की व्यवस्था ही न हो।

(२) सातवलेकर जी के ही वेदों में दर्शाए विविधप्रकार के राज्यशासन के पृ.३ पर लिखा है-

''विशेषेण राजते इति विराज्, तस्य इदम्-वैराज्यम्''

वह राज्य जहाँ (राजा न रहने पर भी) विशेष प्रकार की शासन पद्धति रहती है उसे 'विराज्' कहते हैं और उसका भाव ही वैराज्य है।

(३) 'अथर्ववेदे राजनीतिः' नामक ग्रन्थमें V.R.Ratate लिखते हैं ''विगत राट् यस्मादिति विराट् तस्य इदम्-वैराज्यम्'' राष्ट्र या राट् के न होने की स्थिति को वैराज्य कहते हैं।

हम इस विषय में रटाटे जी से सहमत नहीं रखते क्यों कि-'वैराज्य' राज्य के इतिहास का पहला विन्दु है जब कि 'राष्ट्र' एक आध्यात्मिक तत्त्व चिन्तन है। हाँ सातवलेकर जी की दोनों व्याख्याएँ समीचीन लगती हैं। इस वैराज्य की स्थिति को भीष्म ने बड़े ही स्पष्ट तरीके से रखा है-

''न वै राज्यं न राजासीत् न दण्डो न च दाण्डिकः
धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम्।।

महाभारत शान्ति पर्व-५८/१४

'प्रारम्भ में राज्य नहीं था, राजा नहीं होता था, दण्ड की व्यवस्था नहीं थी,

दण्ड देने वाले भी नहीं थे। केवल धर्म के आधार पर ही सभी प्रजा परस्पर सुरक्षित रहती थी'। इस स्थिति को वैराज्य कहा गया। अतः वैराज्य अराजक नहीं है।

समय बीतता गया। ऋत,सत्य और धर्म द्वारा संचालित वैराज्य में विकृतियाँ आने लगीं, सबल दुर्बल को सताने लगे और मात्स्य न्याय चलने लगा। मात्स्यन्याय क्या है इसके बारे में महाभारत कहता है-

अराजकाः प्रजाः पूर्वं विनेशुरिति नः श्रुतम्
परस्परं भावयन्तो मत्स्या इव जले कृषन्।।
महाभारत, शान्तिपर्व ६७/१७.

पहले (वैराज्य की स्थिति के बाद की स्थिति) अराजक स्थिति में प्रजा पानी में रहकर एक दूसरे को खाने वाली मछलियों के तरह एक दूसरे का विनाश करने लगी। चारों तरफ कोलाहल फैलने लगा। फिर ज्ञानी जनों की दृष्टि उस पर पड़ी और राज्य की व्यवस्था हेतु चिन्तन चलने लगे। तबतक राष्ट्र बन चुका था। लोगों में भय व्याप्त हुआ और विचारों के मन्थन के पश्चात् क्या हुआ देखिए-

४३. शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत।
भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति।। अथर्व- ६/१२८/१

अर्थ- इदं राष्ट्रम् असात् इति (यह राष्ट्र बना रहे इसलिए) नक्षत्राणि (नक्षत्रों ने) शकधूमम् (शकधूम को) राजानम् अकुर्वत (राजा बनाया) अस्मै भद्र अहं प्रायच्छन् (और उन्हें शुभ दिवस प्रदान किया)

भावार्थ- नक्षत्रों ने शकधूम को राजा बनाने की बात यहाँ श्लेष अलंकार में आया है। श्री पाद सातवलेकरजी ने इसके श्लेषार्थ की इस तरह व्याख्या की है-

''इसमें जो 'न-क्षत्र' शब्द है वह शब्द क्षात्रधर्म से रहित सामान्य प्रजा अर्थात् जो प्रजा अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकती ऐसी प्रजा। क्षात्रगुण से रहित प्रजाओं ने अपना एक राजा बनाया। स्वयं 'शक' समर्थ होकर जो शत्रुओंको धू (कम्पायमान) करता है उसका नाम 'शकधूम' है। प्रजाओं ने देखा कि इस प्रकारके तेजस्वी पुरुष को राजा बनाने से इसके सामर्थ्य के कारण हमारे सब शत्रु परास्त होंगे और शत्रुओं के परास्त होने से हमें सुख होगा और

हमारा राष्ट्र बड़ा तेजस्वी होगा।

राजा के होने के पश्चात् एक विशेष भूखण्ड (राज् सुदिव्य शासन का योग्य) ही राज्य बना। इसका प्रमुख उद्देश्य रहा-''इदं राष्ट्रम् असात्'' इसका राष्ट्रजीवन बाधित न होते हुए फले फूले और सच्चे अर्थ में राष्ट्र बना रहे।'' इसी आशय को स्पष्ट करता हुआ यह मन्त्र देखिए-

४४. त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि.भजा वसूनि।।
अथर्व-३/४/२

अर्थ- विशः त्वां राज्याय वृणताम् (प्रजाजन तुझे राज्य के लिए चुनें) त्वाम् (तुझे) इमाः (ये) देवीः पञ्च प्रदिश (दिव्य पाँच दिशाएँ भी) त्वां वृणताम् (तुझे ही चूने)। राष्ट्रस्य वर्ष्मन् ककुदि श्रयस्व (तुम राष्ट्र के श्रेष्ठ एवं उच्चतम स्थान पर विराजो) ततः उग्रः (फिर महान वीर बनकर) नः वसूनि वि-भज (हमारे बीच ऐश्चर्य बाँटो)

भावार्थ- प्रस्तुत मन्त्र में राष्ट्र और राज्य के प्रभेद पर संकेत किया है, जिसमे राजा को राज्य के लिए बताते हुए उसे राष्ट्रियता को अपने में कूट कूट कर भरते जाने एवं राष्ट्र-गौरव के उच्चतम स्थान को प्राप्त होने की बात बताई है।

राजा 'राष्ट्र' का शासन नहीं करता है। वह तो उसे आराध्य देव समझता है, उसके लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करते हुए संघर्ष चलाते रहना भी स्वीकार करता है। महापुरुष की श्रृङ्खला पर विचार करने पर अपने में स्थित राष्ट्रियता की उँचाई जानी जाती है। अतः यह सब विचार कर वह राजा उच्चतम विन्दु में आरूढ होने का संकल्प करे और यह कभी भी विस्मरण न हो कि उसे (राज्याय) राज्य के लिए वरण किया गया है।

राजा बनने के बाद वह क्या करे-यह दर्शाता हुआ मन्त्र कहता है (वसूनि विभज) मात्स्यन्याय के छट्पटाहट में फँसी जनता शकधूम की ओर निहारती है और फिर शकधूम भी जनता की इच्छानुसार धन और ऐश्वर्य का वितरण करे।

यद्यपि पर्याप्त रूप में भाष्यकारों ने राष्ट्र को कहीं देश,और कहीं राज्य मानकर मन्त्रों की व्याख्या की है फिर भी उस विषय में सूक्ष्म रूप से अध्ययन

करने पर राष्ट्र और राज्य में पर्याप्त अन्तर दिखाई देते हैं। आइए, हम उन अन्तरों पर एक चिन्तन करें-

राष्ट्र और राज्य में अन्तर

(१) ''मम राष्ट्रम् यथा नः अमृताः'' (ऋग्वेद. ४/४२/१) में राष्ट्र को देव स्वरूप माना गया। इस से राष्ट्र की आध्यात्मिकता सिद्ध होती है। राज्य जनव्यवस्था हेतु बनते हैं। उसमें वह श्रद्धा और देव भाव नहीं रहता।

(२) ''ततो राष्ट्रं बलम् ओजश्च जातम्'' (अथर्व- १९/४१/१) ऋषियों ने तपस्या से राष्ट्र और उसके ओज याने संस्कृति को बनाया इस लिए राष्ट्र की आत्मा उसकी संस्कृति हुआ करती है। वही चैतन्य है और पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने उसे ही चिति तत्त्व कहा है। राज्य में उस सांस्कृतिक चिन्तन की आवश्यकता नहीं होती।

(३) राष्ट्र की सीमाएँ नैसर्गिक होती हैं क्यों कि राष्ट्र ईश्वर प्रेरित होता है 'इन्द्रजूत' (अथर्व-६/३९/२), जब कि राज्य की सीमाएँ मनुष्य ही तय करता है।

(४) भारत में अनेक राज्य हुए। आज की परिभाषा के अनुसार चोल, पञ्चाल, मगध कीकट सभी सम्प्रभुता सम्पन्न 'राष्ट्र' थे परन्तु वैदिक व्यक्ति उन्हें राष्ट्र नहीं मानता। वह तो उन्हें 'राज्य' मानता है। क्योंकि उन राज्यों के अस्तित्व के कालखण्ड में ही कालिदास ने कहा था-

''अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराज
पूर्वापरो तोयनिधी वगाह्य
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः'' (कुमार सम्भव)

अर्थात् जिस भूमि के उत्तर में नगाधिराज (पर्वतराज) देवतात्मा हिमालय है, जिसने पूर्व और पश्चिम में दो सागरों को धारण किया हुआ है वह भूमि विश्व का मानदण्ड है। यह है राष्ट्र संकल्पना का उदाहरण। अतः आजके बचे खुचे भारत याने India को वैदिक जन 'राज्य' मानता है, राष्ट्र नहीं।

(५) एक राष्ट्र में अनेक राज्य हो सकते हैं और समूचा राष्ट्र ही राज्य बना तो उसे वैदिक जन 'एकराट् राज्य' मानते हैं।

(६) राज्य आते-जाते रहते हैं पर राष्ट्र सदैव रहता है। इस विषय में हम यहुदियों का उदाहरण देख सकते हैं। उन्होंने अपने राज्य खोकर दर-दर की ठोकरें खाईं, फिर भी उनके हृदय का 'राष्ट्र' नहीं मरा, क्यों कि राष्ट्रत्व चहारदीवारी में बन्द नहीं रहता है।

(७) राज्य राष्ट्र के लिए बनते हैं। (इदं राष्ट्रम् असात् इति इसी अध्याय का मन्त्र अथर्व. ६/१२८/१) परन्तु राष्ट्र राज्य के लिए नहीं हुआ करते।

(८) राष्ट्र का लक्ष्य होता है **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना को स्फुरित करना एवं व्यष्टि से समष्टि एवं समष्टि से परमेष्ठी तक की यात्रा तय करना। परन्तु राष्ट्र के इस लक्ष्य को पाने हेतु राष्ट्रजन सरलता से कार्य कर सकें-इसकी व्यवस्था करना राज्य का, उद्देश्य होता है।

(९) ऋत,सत्य,तप,दीक्षा आदि से राष्ट्र की भूमि जीवित रहती है **''सत्यं बृहत् ऋतम् उग्रम् दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञःपृथिवीं धारयन्ति''** (अथर्व.१२/१/१) परन्तु राष्ट्र के इन तत्त्वों में विकृतियों के आने पर इन तत्त्वों की पुनः स्थापना के लिए राज्य बनते हैं।

(१०) वैदिक राष्ट्रभक्त राष्ट्र के साथ तादात्म्य स्थापित करता है (राष्ट्रमु धारय) जैसे राष्ट्रियता की प्राप्ति अध्याय में आए हुए मन्त्र द्रष्टव्य हैं। परन्तु राज्य में केवल नागरिकता (Citizenship) होती है और वह केवल राज्य की सदस्यता भर है।

(११) मनुष्य की राष्ट्रियता नहीं बदलती परन्तु राज्य की सदस्यता (Citizen-ship) कभी भी बदली जा सकती है।

(१२) राष्ट्र स्वयं में एक स्वयम्भू सत्ता है जब कि राज्य,राष्ट्र के कई अधिष्ठानों में एक अन्यतम अधिष्ठान भर है।

(१३) राष्ट्र में भूमि को माता के नाते स्वीकारते हुए विविधता में एकता की दिव्य दृष्टि रखना और एक जन होकर रहना पड़ता है जबकि राज्य संचालन में संचालकों का ऐक्यमत ही पर्याप्त होता है।

(१४) असम का भूभाग राज्य के दृष्टि से पृथक रहा है परन्तु शंकरदेव ने इसे भारतवर्ष कहकर ही सम्बोधन किया है।

(क) केतिक्षणे धरे काले तारो नाहिं थित
आर कि मनुष्य हैबा भारत भूमित?

अर्थात- यह पता नहीं कि काल कब हमें उठा ले जाएगा? मनुष्यो सोचो तो जरा, फिर कभी मनुष्य बनकर भारत में पैदा हो पाओगे? वैदिक राष्ट्र के राष्ट्रियों का राष्ट्र सम्बन्धित चिन्तन ऐसा ही था। वे इसे राजनीति की रोटियाँ सेकने का स्थल या चुल्हा नहीं मानते थे। राजनीति से ऊपर उठकर राष्ट्र में निरन्तर जागते हुए (''वयं राष्ट्रे जागृयामः पुरोहिताः'' यजु. ९/२३) राष्ट्र को परम वैभव के शिखर तक पहुँचाने हेतु अनन्य भक्ति से प्रभु की प्रार्थना करने वाले (इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय अथर्व-७/३५/१) हमारे पूर्वज आज अपने लोग अपने ही घर के रत्नों की खान को न देखकर प्लेटो, अरस्तु और स्मिथ जैसे कुछ ही दिन पहले पैदा हुए लोगों के पास भिक्षा की कटोरी लेकर भिक्षां देहि कहते हुए देखकर इसे राष्ट्रिय अपमान समझते होंगे और पितृलोक में आँसू बहाते होंगे।

अतः आज भारत के राष्ट्रिय जन की इच्छा है कि भारत अब एकराट् राज्य बने जिससे राष्ट्रिय लक्ष्य की प्राप्ति हेतु हमें बल मिले,बुद्धि मिले और कार्यकुशलता विकसित हो उठे। अस्तु इस विषय को यहीं पर विराम देते हुए हम वैदिक साहित्य में वर्णित आदर्श राज्य की संकल्पना पर चर्चा करते हैं।

आदर्श राज्य(जनपद)की संकल्पना

''न मे.स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः''
छान्दोग्य. ५/११/५

अर्थात् मेरे जनपद या राज्य में चोर,कंजूस,मद्यप,अनाहिताग्नि (अग्निहोत्र न करने वाला), अविद्वान और व्यभिचारी मनुष्य नहीं हैं तो फिर व्यभिचारिणी स्त्री कहाँ मिलेगी?

आक्रान्ताओं से अपनी जनता की सुरक्षा हेतु राज्य दुर्गों की व्यवस्था करता है और राज्य का शासक उन्हें योग्य वीरों के हाथों में अर्पण करता भी है ताकि वह समुचित नेतृत्व दे सके। इस विषय का वर्णन करते हुए स्वयं राज्य शब्द समाहित यह मन्त्र देखिए-

"अद्रेः घार्सि भानुं कविं शं राज्यं पुरन्दरस्य
महानि व्रतानि गीर्भि आविवासे" ऋग्वेद. ७/६/२

अर्थात् किले का संरक्षक वीर तेजस्वी ज्ञानी कल्याणमय राज्य का शासक,शत्रु के दुर्गों का विनाशक-ऐसे अधिकारी के महान कार्यों के विषय को मैं अपनी वाणी से गाता हूँ।"

इन सारे तत्वों पर चिन्तन हुए। आर्य ऋषियों ने अनेकों प्रकार के राज्यों के सिद्धान्त व दर्शन बनाए। राज्यों के जो सिद्धान्त वैदिक ग्रन्थों में मिलते हैं पाश्चात्य जगत आज उनकी कल्पना तक नहीं कर सका। देखिए ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण क्या कहता है-

"साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यम् आधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुषः आन्ताद् आ परार्धात्। पृथिव्यैः समुद्रपर्यन्ताया एकराट् इति।।"

ऐतरेय ब्राह्मण- ८म पञ्चिका

यहाँ राज्यों के प्रकार बतलाए गए-

(१) साम्राज्य- विशाल भूभाग में रहने वाले राज्यों को एकत्र कर उनसे आनुगत्य स्वीकार कराते हुए अपने अधीन करना।

(२) भौज्य- संरक्षणवादी राज्यव्यवस्था (To protect and govern)

(३) (क) स्वाराज्य-स्व की शुद्धि में प्राधान्य देते हुए चलाए जाने वाले राज्य।

(ख) स्वराज्य-अपने ही तन्त्र से चलनेबाले राज्य।

(४) वैराज्य- कृतयुग का घर्माधारित,शासकविहीन राज्य।

(५) पारमेष्ठ्य राज्य- ईश्वरीय राज्य जिसमें राजा राज्य को प्रसाद समझता है।

(६) महाराज्य- United states कई राज्यों का एक समूह।

(७) आधिपत्यमयराज्य- Overlordship के अर्थ में पण्डितों ने इसकी व्याख्या की है।

(८) समन्तपर्यायी राज्य- Feudal state गुरुदत्त ने रामराज्य को इसके अन्तर्गत गिनाया है।

(९) सार्वभौम राज्य- समूचे पृथ्वी में भूराज्यसत्ता।

इनके अलावा वेदों में जानराज्य भी आया है उसका तात्पर्य लोकतान्त्रिक राज्य याने Democratic state से है।

व्याख्या में हमने अपने शोध ग्रन्थ में इन राज्य-व्यवस्थाओं और राज्य के प्रकारों में पर्याप्त प्रकाश डाला है। यहाँ तो केवल राज्य पद्धतियों के नाम गिनाना ही हमारा अभीष्ट था।

राष्ट्र और राज्य सञ्चालक (शासक)

राष्ट्र के लिए राज्य बने और राज्यसंचालन हेतु शासक (राजा) बनाए गए। इसलिए राज्य संचालक और राष्ट्र के साथ निकट का सम्पर्क होना स्वाभाविक है। देखिए राष्ट्र और राजा के सम्बन्ध को वेदों ने कैसे दर्शाया है-

४७. राजा राष्ट्राणां पेशो नदीनाम् अनुत्तमम् अस्मै क्षत्रम्।।
ऋग्वेद-७/३४/११

अर्थ- राजा राष्ट्राणां नदीनां पेशः (राजा राष्ट्र की नदियों जैसा होता है,वही उसका स्वरूप है) अनुत्तमं क्षत्रम् अस्मै (श्रेष्ठ क्षात्रतेज इसे प्राप्त हो)।
भावार्थ- नदियाँ देवीतमा होती हैं (ऋग्वेद) वे सभी लोगों के लिए सुलभ भी रहती हैं। नदी की प्रशंसा में अथर्व वेद कहता है

यस्यां समुद्र उत सिन्धरापो
यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः (अथर्व. १२/१/३)

अर्थात् जिस भूमि में समुद्र और नदियाँ अन्न देते हुए कृषकों को संगठित करती हैं सा नः भूमिः (वह हमारी भूमि है)। आगे देखिए-
''यस्याम् आपः परिचराः समानीः अहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति
सा नो भूमिः भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।। अथर्व- १२/१/९

अर्थात्- जिस भूमि में जल समगति से प्रतिक्षण प्रवाहमान रहते हैं ऐसी बहती धारा हमें दूध के तरह ही तेजोमय बनाए।

इसी तरह ऋग्वेद भी कहता है ''मधु क्षरन्ति सिन्धवः'' नदियाँ मधु ही बहाती हैं। इत्थं रूपेण वेदों में नदी की प्रशंसा में बहुत ही मन्त्र मिलेंगे परन्तु हमारा विषय शासक का होने के कारण यहीं पर रूक कर कहना चाहते हैं कि राजा राष्ट्र की नदियों जैसा ही बने। इसप्रकार सर्वजनसुलभता के साथ साथ

क्षात्रतेज भी रहे, ''अस्मै क्षत्रम्'' का यही अभिप्राय है। क्षात्रतेज के जरिए दुष्टों का विनाश, राष्ट्रत्व की अभिवृद्धि, सज्जनों की रक्षा एवं सद्गुणों के विकास किए जा सकते हैं।

इसीलिए राजा को नदियों का स्वरूप वाला और क्षात्रतेज युक्त होना चाहिए-यही वेदों का सन्देश है। राष्ट्र राजा द्वारा सुरक्षित बने इस आशय का एक मन्त्र देखिए-

> ४६. *ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।*
> *आचार्य ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।।* अथर्व- ११/५/१७

अर्थ- आचार्यः ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणम् इच्छते (आचार्य भी ब्रह्मचर्य से समुज्वल ब्रह्मचारी को ही चाहता है)। **ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्र वि-रक्षति** (ब्रह्मचर्य की तपस्या से ही राजा राष्ट्र का विशेष रक्षण कर सकता है)।

भावार्थ- ब्रह्मचर्य के पालन से बुद्धि,बल,ज्ञान,साहस व धैर्य की असीम वृद्धि होती है। ब्रह्मचर्य रूपी तपस्या से तेजस्वी बना हुआ व्यक्ति ही राजा बने-यही वेद का आशय है। वैसे वीर राजा ही राष्ट्र की रक्षा विशेष प्रकार से कर सकते हैं। **'वि-रक्षति'** पद सूचित करता है कि राजा केवल रक्षा नहीं विशेष रक्षा किया करे। सीमाओं की रक्षा, प्रजा में रोटी-कपड़ा और मकान की व्यवस्था, परकीय आक्रमण से राज्यरक्षा,अराष्ट्रिय तत्त्वों का सफाया आदि कार्य उसके कर्तव्य से सम्बन्ध रखते हैं और राष्ट्रदा तत्त्वों को प्रोत्साहित करना भी उसका कर्तव्य है। राजा राज्य का स्वामी होने के नाते उन सभी विषयों पर पैनी नजर रखता है अतः उसीसे राष्ट्र की रक्षा होती है।

''राजा राष्ट्र की रक्षा करता है'' का तात्पर्य राष्ट्र को राज्य के अर्थ में स्वीकारना नहीं रहा वरन् राज्य के राजाओं को भी राष्ट्र और राष्ट्रत्व की रक्षा हेतु प्रेरित करना रहा। इसीलिए राजा के हृदय की कामना ऐसी रही। इसी भाव को व्यक्त करता हुआ वेद कहते हैं-

> ४७. *हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या*
> *ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन्।*
> *मा दूताय प्रहेया तस्थ एषां*
> *तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य।।* ऋग्वेद. १०/१०९/३

अर्थ- अवोचन् (लोगों ने कहा कि) एषा ब्रह्मजाया (यह ब्राह्मण-कन्या) अस्या हस्तेनैव अधिग्राह्य (अपने हाथ से ही स्वीकार करवा कर,विवाहित होकर) दुताय प्रहेया न तस्थ (दूत के प्रति आकृष्ट नहीं होती) तथा (उसी प्रकार) राष्ट्रम् (राष्ट्र भी) क्षत्रियस्य गुपितम् (क्षत्रियों के द्वारा सुरक्षित होता है)।

भावार्थ- अथर्ववेद में भी (५/१७/३ में) यह मन्त्र आया है परन्तु प्रयोग की दृष्टि से अथर्व भाष्य में सायण ने इसी मन्त्र का ऋग्वेद से भिन्न अर्थ लगाया है। हम ऋग्वेद के अर्थ को ही लेते हैं।

यहाँ तो पत्नी एकबार ही अपने जीवन साथी को चूनती है और आजीवन उसके साथ तथा पति भी पत्नी के साथ रहे यह धारणा रही।

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादात् बृहस्पतिः
मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदं शतम्।। अथर्व- १४/१/५२

अर्थ- "यह मेरी पोष्या बनकर रहे। हे सुभगे मुझे तो बृहस्पति ने तुझे दिया है। तू मेरे साथ रहती हुई सन्तानों वाली बनो और सौ साल तक जीवित रहो।"

इस धारणा के कारण आदर्श नारी परपुरुषों में आसक्त नहीं होती। उनकी पातिव्रत्य की ज्वाला ह्रदय में धधकती रहती है। वह कठोरता से साधना से उसे बचाए रखती है।

इसी तरह राष्ट्र की अस्मिता, उसका गौरव, उसका इतिहास, परम्परा एवं सांस्कृतिक धरोहर को राष्ट्रों में राज्यों के (राजा) क्षत्रिय बचाए रखते हैं क्यों कि राष्ट्र की रक्षा याने इन्हीं तत्त्वों की रक्षा ही तो है। वह अपने अन्दर स्थित राष्ट्रिय भाव को साध्वी स्त्री के पातिव्रत्य के तरह प्राण-पण से बचाए रखता है इसीलिए राष्ट्र जीवन स्वतन्त्र रूप से आगे बढता जाता है।

राज्य कैसे शासित हो

४८. आ ते राष्ट्रमिह रोहितोहार्षीद्, व्यास्थन् मृधो अभयं ते अभूत्।
तस्मै ते द्यावा-पृथिवी रेवतीभिः, कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः।।
अथर्व- १३/१/५

अर्थ- इह ते राष्ट्रम् (यहाँ तेरे राष्ट्र को) रोहितः अहार्षीत् (सूर्यदेव ने हर लिया। सायणने अर्थ किया है- तेरे राष्ट्र पर सूर्य उग आए) ते मृधः अभयम्

अभूत् (युद्ध के प्रति तेरा अभय भाव रहे) **तस्मै ते** (उस प्रकार के,तेरे लिए) **द्यावा-पृथिवी** (द्युलोक और भूलोक ही) **रेवतीभि शक्वरीभिः** (वैभवदायिनी ऋचाओं के द्वारा) **इह** (इस राज्य में) **ते कामं दुहाथाम्** (तुम्हारी कामनाएँ दुही जाएँ याने पूर्ण की जाएँ)

भावार्थ- ते कामाः (शासकस्य कामाः) शासक की कामनाएँ क्या होती हैं इस पर विचार करना होगा। अपने में प्रखर राष्ट्रियता को धारण करना, लोगों को भी राष्ट्रत्व के आधान के लिए प्रेरित करना,राष्ट्रद्रोहियों को परास्त करना दुष्टों का दमन करना,ब्राह्मतेज और क्षात्रतेज की साधना आदि ही एक सुयोग्य शासक की कामनाएँ होती हैं। इस मन्त्र में अभय की भी कामना की गई है।

इन कामनाओं की पूर्ति करने की क्षमता रेवती शक्वरी अर्थात् वैभवदायिनी ऋचाओं में होती है। तात्पर्य यह है कि वैदिक वाङ्मय की वाणी को हृदयंगम कर तदनुसार कार्यों का संचालन करने पर वह कामनाएँ पूरी होती हैं।

शासक को प्रेरित करते हुए यही बात मन्त्रद्रष्टा बता रहे हैं। वे कहते हैं कि-तेरे राज्य में भाग्य सूर्य का उदय हो चुका है। अब तुझे हताश होने की आवश्यकता नहीं।

अद्‌भूत प्रेरणा का स्फुरण करने वाला तथा वेद में इसके पहले आया हुआ यह मन्त्र कितना आत्मविश्वास और ध्येयनिष्ठा से सराबोर है उसकी छटा तो देखते ही बनती है।

> ***४९. रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह, गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम्।***
> ***ताभिः संरब्धमन्वविन्दन्, षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहा।।***
> ***अथर्व- १३/१/४***

अर्थ- रुहो रोहित रुरोह (आरोहणशील सूर्यदेव उदित हुए) **जनीनाम् उपस्थम् जनीषां गर्भःआरुरोह** (पुरुष वीर्य के माध्यम से वह माताओं के गर्भ में भी प्रवेश कर गए) **ताभिः संरब्धम् अन्वविन्दन्** (उन लोगों से परस्पर सम्पर्कित होते हुए) **षडुर्वी गातुम्** (छ उर्वियों को पाने हेतु) **आ अहा** (प्रतिदिन) **इह राष्ट्रं प्रपश्यन्** (इस राष्ट्र को देखते हुए) लोगों को प्रेरित करते हैं।

भावार्थ- राष्ट्र के क्षितिज में भाग्य सूर्य का उदय होना, फिर अपने में तेज,साहस और सौभाग्य संचार कर राष्ट्र को समुन्नत बनाने वालों के निर्माण हेतु माताओं

के गर्भ में प्रवेश करने की योजना की जानकारी देना, छह उर्वियों याने द्यौ, पृथिवी दिन,रात्रि जल और औषधियों को मानव कल्याण में लगाना इस राष्ट्र को निरन्तर निरीक्षण करना ऐसे कार्य हैं जिसमें राष्ट्र में जीवन का संचार हो उठता है। मृतप्राय राष्ट्र में मृतसञ्जीवनी का संचार करने में समर्थ ऐसे वेदमन्त्र किसे अनुप्राणित नहीं करते?

पुरोहित के ऐसे ओजस्वी वक्तव्यों के कारण ही अनादि काल से इस भूमि में सनातन मानवमूल्यों की स्थापना हुई,संगठन चले और वैदिक समाज सुविशाल हृदय को लेता हुआ वसुधैव कुटुम्बकम् के मन्त्र को आजतक भी जपता आया है।

आधुनिक भारत में भी अरविन्द घोष, रामकृष्ण परमहंस,राममोहन राय, विवेकानन्द,दयानन्द सरस्वती जैसी विभूतियों ने भी वैदिक ऋषियों के तरह ही राष्ट्र चेतना को उद्दीप्त किया है। इसी प्रकार रामनाड़ के अभिनन्दन समारोह में (२५ जनवरी १८९७ को) स्वामी विवेकानन्दने ओजस्वी वाणी से कहा था-

''सुदीर्घ रजनी अब समाप्त होती हुई जान पड़ती है। महादुःख का प्रायःअन्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निमग्न शव मानों जाग्रत हो रहा है। इतिहास की बात तो दूर रही,जिस सुदूर अतीत के घनान्धकार को भेद करने में अनुश्रुतियाँ भी असमर्थ हैं वहीं से एक आवाज हमारे पास आ रही है। ज्ञान, भक्ति और कर्म के अनन्त हिमालय स्वरूप हमारी मातृभूमि भारत की हर एक चोटी पर प्रतिध्वनित होकर यह आवाज मृदु, दृढ़ परन्तु अभ्रान्त स्वर में हमारे पास तक आ रही है।......... वह निद्रित भारत अब जागने लगा है। मानों हिमालय के प्राणप्रद वायुस्पर्श से मृतदेह के शिथिलप्राय अस्थि मांस तक में प्राण संचार हो रहा है। जड़ता धीरे धीरे दूर हो रही है। जो अन्धे हैं वे ही देख नहीं सकते और जो विकृत बुद्धि के हैं वे ही समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गम्भीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब वह फिर सो भी नहीं सकती। कोई बाह्य शक्ति अब इसे दबा नहीं सकती क्यों कि यह असाधारण शक्ति का देश अब जागकर खड़ा हो रहा है।

कितना ओजपूर्ण सन्देश था यह? ऐसा ही तो सन्देश आर्य ऋषि भी दे रहे

है- ''आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीत्'' (तेरे राष्ट्र पर सूर्य उग चुके) अतःराष्ट्र में राज्य के शासन वेदानुकूल बनें ऐसी कामना रही। इस राजनीति में धर्म और अध्यात्म की अमिट छाप है और आज के परिप्रेक्ष में इन्हीं विचारों को सामने रखते हुए हम स्वामी जी को उद्धृत करते हैं-

''हमारी इस मातृभूमि में इस समय भी धर्म और अध्यात्म विद्या का जो स्रोत बहता है, उसकी बाढ़ समस्त जगत् को आप्लावित कर, राजनीतिक उच्चाभिलाषाओं एवं नवीन सामाजिक संगठनों की चेष्टाओं में प्रायःसमस्तप्राय,अर्धमृत तथा पतनोन्मुखी पाश्चात्य और दूसरी जातियों में नवजीवन का संचार करेगी।''
(विवेकानन्द साहित्य,नागपुर प्रकाशन,खण्ड-५,पृष्ठ.-४५)

राजा कैसे शासन करे-इस विषय को कहते हैं-

७०. अभीवस्वः प्रजिहीते यवः पक्वः परो बिलम्।
जनः स भद्रमेधते राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः।। अथर्व-२०/१२७/९

अर्थ- अभीवस्वः प्रजिहीते यव पक्व परो बिलम् (पेटरूपी बिलको पका हुआ जौ प्राप्त होता है) परिक्षितः राज्ञः राष्ट्रे (घूम घूम कर दुष्टों को क्षय करनेवाला राजा जिस राष्ट्र में हों उस राष्ट्र में) सः जनः (वह राष्ट्रजन) भद्रम् एधते (बढ़ चढ़कर लब्ध कल्याण को प्राप्त करता है)

भावार्थ- हमने इसी ग्रन्थके २६ वें मन्त्र में प्रस्तुत परिक्षित् शब्द का विवेचन किया। अन्य विषय स्पष्ट हैं। अतःइसे यहीं पर विराम देते हैं।

राजा (शासक)राष्ट्रमय बने

राजा के गुण कैसे हों-इस विषय को लेकर वेदों में सूक्तों की भरमार है, पर राजा के गुणों में राष्ट्रमय बनने,राष्ट्र से च्युत न होने एवं राष्ट्र के श्रेष्ठ स्थान पर आसीन होने की उदात्त प्रेरणाएँ देते हुए गाए जाने वाले वेदमन्त्रों की चर्चा करते हैं। पहले **'राष्ट्रियता की प्राप्ति'** नामक अध्याय में दिए अनुसार जब उसमें राष्ट्रियता की भावना अंकुरित होती है तब उसका गुरु उसे कहता है-

७१. आ त्वगन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि।
प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि-राज।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तु
उपसद्यो नमस्यो भवेह।। अथर्व-३/४/१

अर्थ- राष्ट्रं त्वा आगन् (तुझमें राष्ट्र समा चुका है) वर्चसा सह उदिहि (तेजस्वी बनकर उगो) विशां पति (लोगों के हृदय सम्राट बनकर) प्राङ् (प्रमुखता से) एकराट् (एकराट् राज्य पाकर) त्वं वि-राज (तुम विराजमान होओ) सर्वाः प्रदिशः ह्वयन्तु (सभी दिशाएँ तुझे बुलाएँ) इह उपसद्य (इस स्थान में पहुँचकर) नमस्यः भव (नमस्कार के योग्य बनो)।।

भावार्थ- पुरोहित राजा से कहता है कि-राजा अब राष्ट्रज्ञ हो चुका है, अतःउसको चाहिए कि-वह तेजस्वी बने,आगे बढ़े और एक अखण्ड राज्य पाकर विराजे। जब इन गुणों के समावेश होते हैं तब वह नमस्य बने। उसकी राष्ट्रिय भावना अंकुरित होते ही पुरोहित उसे उदात्त प्रेरणा से अनुप्राणित करता है और आगे बढ़ते हुए मानवता की पराकाष्ठा को प्राप्त होने और परिमाणतःनमस्य बननेका अद्भूत मार्गदर्शन करता है। यही हमारी वैदिक परम्परा रही और इन्हीं परम्पराओं के चलते हमने कई स्वर्णयुगों के इतिहास रचे, विदेशी आक्रान्ताओं के अगणित झञ्झावातों को झेलते हुए आजतक भी जीवित बने हुए हैं और भविष्य में विश्व का मार्गदर्शन करने का स्फूर्तिप्रद स्वप्न भी सँजोए हुए हैं।

राजा में स्थापित राष्ट्र भाव सदा ही उद्दीप्त रहे इसलिए राज्य में ज्ञानियों की सजगता सर्वथा आवश्यक है (वयं राष्ट्रे जागृयामः पुरोहिताः) (हम पुरोहित गण राष्ट्र में सतत जागते रहें।) एक मन्त्र में इस विषय को लेकर राजा को सचेत किया जा रहा है-

७२. आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद् राष्ट्रमधिभ्रशत्।।
ऋग्वेद.१०/१७३/१

थोड़े से पाठभेद से अथर्ववेद में यही मन्त्र आया है-

७३. आ त्वाहार्षमन्तर भूः ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत्।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद् राष्ट्रमधिभ्रशत्।।
अथर्व.६/८७/१

अर्थ- आ त्वाहार्षम् (तुम्हें राष्ट्र की ओर ला रहा हूँ) अन्तः एधि (हमारे अन्दर ही रहो) ध्रुव अविचाचलि तिष्ठ (स्थिर एवं अचञ्चल होकर रहो) त्वा सर्वा विशः वाञ्छन्तु (तुझे सारी जनता ही चाहे) त्वत् (तुम्हारे हृदय से) राष्ट्रम् (राष्ट्रभाव,राष्ट्रत्व) मा अधिभ्रशत् (नष्ट न हो)।

भावार्थ- राज्यारोहरण के समय राजा को इसी तरह चेतावनी दी जाती है। हम राजा को दिए गए अन्य उपदेशों को छोड़कर मा त्वत् राष्ट्रम् अधिभ्रशत् इस वाक्य की ही व्याख्या करते हैं।

राष्ट्र तत्त्व सुदिव्य होता है जो मनुष्य को मानवता की पराकाष्ठा तक पहुँचाता है। अतः उस राष्ट्र तत्त्व में सात्विकता,क्षमाशीलता,दानशीलता,पवित्रता, विद्वत्ता जैसे गुण भी समावेश होते हैं। उन्हें ही धर्म कहा जाता है। देखिए-

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रीयनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। मनु.

यही धर्म है तथा यही तत्त्व अभ्युदय और निःश्रेयस् का साधन स्वरूप है इसीलिए कहा गया **''यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सः धर्मः''** (वैशेषिक दर्शन) इसलिए राष्ट्र के साथ धर्म का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहता है। धर्म को छोड़कर राष्ट्र टिक नहीं सकता। धर्म के स्खलन से राष्ट्रका स्खलन होता है। व्यक्ति से भी यदि धर्म का स्खलन हो तो उससे राष्ट्रत्व भी स्खलित हो जाता है और वह स्वेच्छाचारी बन जाता है। बेन और नहुष की कथाएँ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।इसीलिए वैदिक जन चाहते हैं कि-राष्ट्रियता को जानने वाला, राष्ट्रियता से प्रेरित, राष्ट्रभक्ति में सराबोर बना हुआ, अपने उच्चतम आदर्शों की दिव्यता से आलोकित व्यक्ति ही राज्य-तन्त्र की चाभी थामे। यदि शासक दुष्ट बने तो सज्जन श्राप दिया करते हैं उस श्राप का स्वरूप इस प्रकार है-

''तेऽधराञ्चः प्र प्लवतां छिन्ना नौरिव बन्धनात्
न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम्''।। अथर्व-३/६/७

अर्थात् बन्धनात् छिन्ना नौःइव (बन्धन से छुटी हुई नाव के तरह) ते अधराञ्चः प्रप्लवताम् (वे दुष्ट अधोमुख होकर बह जाएँ), वैबाधप्रणुत्तानाम् (विशेष बाधा करने वालों का, सताने वालों का) पुनःनिवर्तनं न अस्ति (पुनःप्रत्यावर्तन की सम्भावना ही नहीं)

इसी तरह सप्तर्षियों ने नहुष को च्युत किया और जनता में शान्ति विराजित हुई।

अथर्व वेद में व्रात्य के वर्णन के जरिए सुयोग्य,वीर और ज्ञानी राष्ट्रजन के विषयका वर्णन किया गया है (देखिए १५/१ से १५/७ तक) आगे के सूक्त का पहला मन्त्र कहता है-

'सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत' (१५/८/१)

उसने रञ्जन किया फिर राजा की उत्पत्ति हुई। ऐसे श्रेष्ठजन को वेदों ने व्रात्य याने समूहपति कहा है। राजा इस प्रकार के समूहपति को योग्य सम्मान व आतिथ्य दे तथा उससे उपदेश ग्रहण करे। ऐसा करने से-

७४.	***श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्।***
	तथा क्षत्राय नावृश्चते तथा राष्ट्राय नावृश्चते।।
	अथर्व.१५/१०/२

अर्थ- एनं श्रेयांसम् (ऐसे श्रेष्ठ समूहश्व्रपति को) आत्मनो मानयेत् (शासक याने राजा अपना मानकर चले) तथा (ऐसे रहने से वह) क्षत्राय न आ वृश्चते (क्षात्रतेज का विनाश नहीं करता है) राष्ट्राय (उसमें स्थित राष्ट्रशक्ति का भी) न आ वृश्चते (विनाश नहीं करता है)।

भावार्थ- यह स्वाभाविक ही है जिस प्रचण्ड ब्राह्मतेज के आधार पर समूहपति जैसे तत्त्व क्षात्रतेज को उद्दीप्त करते हैं वैसे तत्त्वों की अवमानना करने से राजा का राज्य च्युत होता है। केवल यही नहीं तो राजा में स्थित राष्ट्रत्व का अपमान होता है और उसका क्षात्रतेज भी विनष्ट होता है। हम ऐसे कई उदाहरण पाते हैं। ऐसे श्रेष्ठ जनों के अनादर के कारण ही रावण का अन्त हुआ,कंस और जरासन्ध जैसे दुरात्मा राजा धराशायी हुए। कौटिल्य के अपमान के कारण नन्दवंश को ही बलि चढ़नी पड़ी। क्यों कि ब्राह्मतेज सम्पन्न व्यक्ति का अपमान यही दुर्गति लाता है। इसी को राष्ट्र का विनाश होना याने राष्ट्रियता का क्षीण होना कहते हैं। इस सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं-

''जब राष्ट्रिय जीवन कमजोर पड़ जाता है, तब हर तरह के रोग के कीटाणु उसके शरीर में (याने देश में) इकट्ठे जमकर उसकी

राजनीति,समाज,शिक्षा और बुद्धि को रुग्ण बना देते हैं''।
(विवेकानन्द साहित्य,नागपुर प्रकाशन-खण्ड ५,पृ १८२)

राजा के अन्दर छिपी हुई राष्ट्रिय भावना सतत जागरूक बनकर रहे इसी हेतु वेदों ने उन्हें उत्साह प्रदान किया, उपदेश दिए एवं चेतावनियाँ भी दीं।

आज के परिप्रेक्ष में भी भारत के राष्ट्रिय जीवन को सुखी,समृद्ध एवं शक्तिशाली बनाना हो तो क्षात्रतेज और ब्राह्मतेज का समाहार कर सकने वाले समूहपति,पुरोहित जैसे महामनस्वियों का एक अभूतपूर्व जागरण होना पड़ेगा। आज हमारा राष्ट्रदेवता ऐसे ही वीरपुङ्गवों की प्रतीक्षा कर रहा है। इस राष्ट्र में राज्यसंचालक भी वेद में कहे हुए राजाओं की भाँति राष्ट्र भाव से ओतप्रोत होंगे तो वैदिक ऋषि की यह प्रार्थना भी साकार हो उठेगी ''इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय'' अथर्व ७/३५/१ (प्रभो मेरे इस राष्ट्र को वैभव के शिखर तक पहुँचाओ।) ❑❑

राष्ट्र में पुरोहित

(क्षात्रतेज एवं ब्राह्मतेज का अद्‌भूत समाहार)

विश्व का सर्वप्रथम लिखित साहित्य के सर्वप्रथम वाक्य में ही अग्नि को पुरोहित कहना पुरोहित शब्द की महत्ता को दर्शाता है (अग्निमीळे पुरोहितम् ऋग्वेद. १/१/१)। पुरोहित के सम्बन्ध मे सातवलेकर लिखते हैं पूर्ण हित करने वाले का नाम पुरोहित है। यजमान का पूर्ण हित करने वाला पुरोहित होना चाहिए। जब सम्पूर्ण राष्ट्र का विचार करना होता है उस समय राष्ट्र ही यजमान है और सब ब्राह्मण जाति उस राष्ट्र के पुरोहित के स्थान पर होती है। इससे सम्पूर्ण राष्ट्र का पूर्ण हित करने का भार पुरोहित वर्ग पर आ जाता है। ज्ञान की ज्योति राष्ट्र में प्रज्वलित कर उस ज्ञान के द्वारा राष्ट्र का अभ्युदय और निःश्रेयस् सिद्ध करना पुरोहित का कर्तव्य है।
(अथर्ववेद- मातृभूमि और स्वराज्यशासन,पृष्ठ.२५७)

ऐसे त्यागवीरों की प्रशंसा में वेदों ने बहुत ही गीत गाए। संस्कृत साहित्य के अथाह भण्डार में ऐसे लंगोटधारी, निस्पृह,दूसरों के कल्याण हेतु ही अपने को खपाने वाले,ज्ञान के अनन्त भण्डारस्वरूप, सदाचार और त्याग के मूर्तिमान ब्रह्मर्षियों की श्रृङ्खला पाई जाती है जिन्होंने अपने जीवन को तिल-तिल जलाकर हेतु समाज अर्पण कर दिया। ऐसे लोगों की छत्रछाया में ही राजे, महाराजे और सम्राट सभी अपने को धन्य मानते हुए सच्चे अर्थ में राष्ट्रसेवा करते रहे।

इसप्रकारके त्यागधन पुरोहितों की ही कल्पना रही की राष्ट्र जीवन को सुदृढ, सशक्त एवं महिमामय बनाने हेतु ब्राह्मतेज व क्षात्रतेज का समाहार हो। राष्ट्र निर्माण में ऐसे लोगों की भूमिका को Eat, drink and be merry जैसे भौतिक सुख को ही जीवन का यथार्थ कहकर स्वीकारने वाले नौसिखिए क्या समझें? इसीलिए तो History of British India,१८२० के पृष्ठ १८९-९० में James Mill एवं 'Indian Empire' p-१३६ में W.W.Hunter ने आश्चर्य

चकित होकर लिखा है कि-उन्होंने राजशक्ति प्राप्त करने का कभी प्रयास नहीं किया।

पुरोहित का संकल्प

यह दुनिया के लिए आश्चर्य का विषय बन जाता है कि शिलोञ्छ वृत्ति से जीवित रहने वाला एक लंगोटधारी व्यक्ति राजा के राजमहल में पूजित ही नहीं होता बरन् पत्नियों बेटों और बेटियों सहित उसकी सेवा में कहीं भी कमी न रहे, इस हेतु से जागरूक रहता है। इतना होने पर भी वह धन का भिखारी कभी कभी राजाको आँखें तरेरता है और खरी-खोटी सुनाता है। वह राजा स्वयं ही न्याय और दण्ड का अधिकारी होने पर भी उस नंगे या फटेहाल व्यक्ति के सामने गिड़गिड़ाता है और गलती को सुधारने का सौगन्ध खाता है।

इसलिए वह व्यक्ति राजा तक को डाँट सकता था। क्यों कि-उसने लोकेषणा और वित्तेषणा को त्यागकर लोकहित को ही अपने जीवन का व्रत बना लिया होता था। उसका वज्रसंकल्प, मातृभूमि के लिए किया गया सर्वस्व त्याग,सदाचार के तेज से उद्दीप्त अद्भूत व्यक्तित्व देखते ही बनता था। देखिए उसका वज्र संकल्प कैसा होता था-

> *७७. वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमं राजानम् ओषधीषु अप्सु।*
> *ताऽस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयं राष्ट्रे जागृयामः पुरोहिताः।।*
> *यजु. ९/२३*

अर्थ- वाजस्य (अन्न के) प्रसव (उत्पन्न करने वाले प्रजापति ने) अग्रे (सबसे पहले, आदि सृष्टि में) ओषधीषु (ओषधियों में) अप्सु (जलों के अन्तर्भाग में) इमम् (इस) सोमम् (सोमवल्लीरूप) राजानम् (दिव्य पदार्थ को) सुषुवे (उत्पन्न किया) ता (वे सब) अस्मभ्यम् (हमारे लिए) मधुमती (माधुर्ययुक्त) भवन्तुः (बनें)। वयं पुरोहिता (हम पुरोहित गण) राष्ट्रे जागृयाम (राष्ट्र में सजग रहें)।

भावार्थ- पुरोहित पहले तो ईश्वर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है। क्यों कि ईश्वर ने ही सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ दिव्य पदार्थों की सृष्टि की। उसके कारण ही राष्ट्र अस्तित्व में आया। ये सारे पदार्थ समग्र जनता के लिए सुलभ हों, उन पदार्थों का ज्ञान हो, वे उपयोग में लाएँ और इस तरह

माधुर्ययुक्त होकर सबकुछ लोगों के प्रयोग मे आएँ।

इसके लिए लोगों को सही मार्गदर्शन मिले इसपर चिन्तन करने का समय आया और हमारे पुरखों ने चिन्तन का प्रारम्भ भी किया।

मन्त्र में निहित शिक्षाव्यवस्था-(१) 'अप्सु' पानी के अन्दर स्थित तत्त्व आत्मा का द्योतक है अतःयहाँ अध्यात्म तत्त्व अभिप्रेत है।

(२) योग्य शिक्षा के जरिए प्रकृति का दोहन चले (शोषण नहीं) इसलिए कहा गया कि वह सब तो **अस्मभ्यम्**-हमारे लिए है।

(३) पदार्थों का प्रयोग गलत तरीकों से हो तो वह मानवसमाज के लिए घातक सिद्ध होगा। अतःशिक्षा के जरिए उन पदार्थों को विष बनाने को नहीं अपितु **मधुमतीः** बनाने का उपदेश दिया गया है।

(४) इससे इतिहास का ज्ञान भी मिलता है। जैसे-पहले प्रजापति ने इस सृष्टि को उत्पन्न किया।

मन्त्र में निहित अर्थव्यवस्था- समुद्र के अन्दर दिव्य पदार्थों का मिलना अस्वाभाविक नहीं है। वहाँ पाए जाने वाले दिव्य पदार्थों को आहरण करने की योग्यता का, कौशल का कुछ न कुछ उत्पन्न होना भी चाहिए। उनके आहरण से ही जनता को आनन्ददायक पदार्थ मिलते हैं। इसको श्लेष मानें तो अप्सु याने पानी के मध्य भाग में दिव्य पदार्थो को आहरण करने की बात कठोर श्रम से उत्पादन बढ़ाना भी होता है।

मन्त्र में समाजशास्त्र- मानव समाज में नाना जीवनादर्शों के एवं अनेकों भाषाओं के बोलने वाला जनसमाज वैसा ही होता है जैसे सागर के तह में छिपे हुए अनेकों दिव्य पदार्थ। परन्तु सभी पानी में हैं और सभी में पानी है। इसी तरह सभी समाज में और वह समाज सब में होकर वैदिक जनों का जीवन यापन करने की परम्परा है जो इस मन्त्र में प्रतिविम्बित हो रही है।

मन्त्र में राजनीतिशास्त्र- सागर में स्थित सभी औषधियों का तात्पर्य राज्यों के जन समूह का होता है। जब भी अव्यवस्था आई तभी प्रजापतिने राजानं सुषुवे राजा को उत्पन्न किया। और ताः याने राजा के शासन-कार्य हमारे लिए मधुमतीः आनन्ददायक बनें।

कुछ भी हो, यह मन्त्र समाज जीवन के सभी पहलुओं को उजागर करता हुआ पाया जाता है। यहाँ मन्त्र का अभिप्राय है कि हमारा राष्ट्र इसी तरह प्रभु

की कृपा से फला-फूला, अनेकों विद्याएँ मिलीं,फल मिले और वैभव की संकल्पना बनी। उन तत्त्वों को यथावत् बनाए रखने हेतु जिस जनजागृति की आवश्यकता होती है, उस जागृति को निर्वहन करने वाला कैसा हो? एक स्वार्थी, स्वेच्छाचारी, अर्थलोलुप और सत्तालोलुप व्यक्ति को ऐसा दायित्व नहीं दिया जा सकता। इसीलिए निस्पृह, निस्वार्थी,व्यक्तिकेन्द्रिकता से दूर, विद्वान, ज्ञानी एवं साहसी पुरोहित अग्रसर होकर कहता है- इस ईश्वरीय राष्ट्र में हम पुरोहित जागृत हो कर रहें ताकि यह राष्ट्रजीवन का निर्झर मधुमतीः सुखदायक होकर बहता रहे।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ, सान्दीपनि, महामति चाणक्य और समर्थ गुरु रामदास इसी वैदिक आदर्श का निर्वहन करने वाले पुरोहित थे। कुछ ही दिन पहले स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, अरविन्द, श्री ल प्रभुपाद जैसे सांस्कृतिक चेतना का शंखनाद करनेवाले महापुरुषों की श्रृङ्खला को भी हमने देखा। ये सभी महापुरुष अपने में पुरोहित शब्द को सार्थक बनानेवाले थे। ऐसे अगणित महापुरुषों की श्रृङ्खला के कारण ही परकीयों के आक्रमणों का सामना करते हुए भारत का राष्ट्रजीवन गरिमामय बना रहा।

पुरोहित राष्ट्र हेतु क्या नहीं करता है? उसकी तपस्या, उसका सांसारिक सुखों का त्याग एवं राष्ट्ररक्षा की तत्परताओं की प्रखरता की छटा को दर्शाता हुआ यह वेदमन्त्र उसकी घोषणा हमें सुना रहा है।

५६. बह्वी समा अकरमन्तरमस्मिन्
इन्द्रं वृणानः पितरं जहामि।।
अग्निसोमो वरु णस्ते च्यवन्ते
पर्यावत् राष्ट्रं तदवाम्यायन्।। ऋग्वेद. १०/१२४/३

अर्थ- अस्मिन् (इस यज्ञस्थल में) बह्वी समा अन्तरम् अकरम् (अनेकों वर्ष व्यतीत किए) इन्द्रं वृणानः पितरं जहामि (इन्द्र का वरण करते हुए पितरों का परित्याग किया)। (परिणामतः) ते अग्नि-सोमो वरुणः च्यवन्ते (वे अग्नि, सोम और वरुण च्युत होते हैं) (और) राष्ट्रं पर्यावत् (राष्ट्र में विप्लव खड़े होते हैं) तदवाम्यायन् (तब मैं उसकी रक्षा करता हूँ)।

भावार्थ- एक पुरोहित तपस्या करते हुए वर्षानुवर्ष का कालखण्ड व्यतीत करता है। उसकी लगन, कार्यनिष्ठा, दृढ़ संकल्प ही उसे साधना और अनुसन्धान की

प्रयोगशाला सदृश यज्ञस्थल में साधक और तपस्वी बनकर खोज करने की तीव्र ललक जगाते हैं।

वह इन्द्र को वरण करता है। शत्रु को छिन्न भिन्न करनेवाली ऐश्वरिक शक्ति (इन् + द्र) ही उसकी उपास्य शक्ति बनी।

जहाँ तक पितरं जहामि का तात्पर्य है उस विषय को सायण ने कहा- **पितरम् उत्पादकम् अरण्यात्मकं जहामि परित्यजामि इति** ग्रिफीथ कहा. "I bid farewel to the great God, the Father and for neglect obtain my phair of my worship". (Hymns of the Rgveda-page.630)। परन्तु इस मन्त्र की व्याख्या में वेङ्कट माधव की व्याख्या ही हमारे लिए सन्तोष जनक है। वे लिखते हैं **अधुना पितरं यजमानम् अश्रद्दधानम् जहामि** तात्पर्य यह बना कि पुरोहित श्रद्धाहीन राजा यजमान को छोड़कर तपस्या करने लगा। पुरोहित के प्रति बनी हुई राजा की श्रद्धाहीनता के कारण राज्य से (१) अग्नि, (२) सोम और (३) वरुण च्युत हो जाते हैं और राष्ट्र समस्याओं के चक्रवात में फँसकर त्रस्त होने लगता है। तात्पर्य यह है कि अग्नि (अग्रगामिता), सोम (शान्ति) और वरुण (ज्ञान) की अनुपस्थिति स्वाभाविकतया राष्ट्र की दुर्दशा का कारण होता है। इसके परिणाम स्वरूप राष्ट्र में तीव्र असन्तोष फैलता है। राष्ट्र स्वयं अपने अर्थ में दिव्य तत्त्व होता है और इसके अन्दर विकृतियों के होने का तात्पर्य दुष्ट जनों का बोलबाला होना होता है।

ऐसे में पुरोहित घोषणा करता है 'तब मैं इसकी रक्षा करता हूँ'। वह राष्ट्र की दुर्दशा की स्थिति में अकेले मोक्ष प्राप्ति हेतु तपस्याएँ नहीं करता क्यों कि वह तो राष्ट्रपुरुष है। हाँ, वह अपने व्यक्तिगत व्यवहारों पर राज्यतन्त्र से रूठकर कहीं ज्ञानसाधना एवं बलसाधना में लग सकता है, परन्तु राष्ट्र पर विपत्ति के बादल मँडराते ही वह उठकर खड़ा होता है और संजोई हुई अपनी समग्र शक्ति को लेकर द्यौ शान्तिः, अन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिः, आपः शान्तिः.........कहता हुआ राष्ट्र में पुनर्जागृति का शंखनाद करता है।

राष्ट्र के संरक्षण में सर्वदा सजग रहनेवाले वे पुरोहित सामान्य नहीं होते। उनकी वाणी में प्रखरता, ओजस्विता और मार्गदर्शन की क्षमता रूपी उर्मियाँ हिलोरें लेती हुई होती हैं। प्रचण्ड आत्मविश्वास, अद्‌भूत त्याग, वज्र संकल्प, अथाह राष्ट्र भक्ति, ज्ञान व विश्व कल्याण की सुदिव्य भावनाओं को जीवन मार्ग

का पाथेय बनाने वाले वे हमारे पूर्वज ही तो थे। इस विश्व में अन्यत्र ऐसा समुज्वल इतिहास कहाँ है? राष्ट्रजन एकबार भी अपनी उस शक्ति का साक्षात्कार कर ले तो फिर से लंका दहन का इतिहास प्रारम्भ होगा, शान्ति रूपिणी सीता मैया का उद्धार करने हम सभी नर- वानर युद्ध का शंखनाद करेंगे, आततायी रावण सहित इन्द्रियों के दास बने कुम्भकर्णों, अहंकारी एवं मदोन्मत्त मेघनादों का वध करेगें और अपने देश में उस शान्ति स्वरूप सीता माता को वापस लाने में सफल रहेंगे। राष्ट्रात्मा आज उसी घड़ी की प्रतीक्षा में है।

पुरोहित अपने संकल्प को उसकी ओजस्वी वाणी से व्यक्त करता है-

५७. समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम्
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम्।। अथर्व-३/१९/२

अर्थ- अहम् एषां राष्ट्रं संस्यामि (में इनके राष्ट्र को दृढ करता हूँ) ओजःबलं वीर्यम् संस्यामि (ओज, बल और वीर्य को भी दृढ करता हूँ)। अनेन हविषा (इस हवि से) अहं शत्रुणां बाहून् वृश्चामि (मैं शत्रु की भुजाओं को काटता हूँ) (सायण ने 'वृश्चामि' का अर्थ 'सामर्थ्य हीन बनाना' किया है)।

साथ ही इस मन्त्र को भी देखिए-

५८. एषामहमायुधा संस्यामि एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः।।
अथर्व-३/१९/५

अर्थ- अहम् एषाम् आयुधा संस्यामि (मैं इनके आयुधों को तीक्ष्ण बनाता हूँ) एषां क्षत्रम् अजरं जिष्णुः अस्तु (इनका क्षात्रतेज कभी भी वृद्धत्व को प्राप्त न हो, विजयशाली बने) विश्वेदेवा एषां चित्तम् अवन्तु (सभी देवगण इनके इस मनको सुरक्षित रखें)।

भावार्थ- ऊपर के दोनों मन्त्र एक ही सूक्त के हैं और पूरा सूक्त ही पुरोहित की उक्तियों का सूक्त है। उसका उद्देश्य ही राष्ट्र को दृढ बनाना है। यहाँ पर 'एषां राष्ट्रम्' इनका राष्ट्र यह पद माननीय है। यहाँ प्रश्न बनते हैं-

(क) ऋषि क्यो 'मेरा राष्ट्र' न कहकर इनका राष्ट्र कह रहे है?

(ख) 'इनका राष्ट्र' रहने पर तो शासन के इकाई याने राज्यका अर्थ आ रहा

है तो फिर राष्ट्र को ही राज्य क्यों न मानें?

पहले प्रश्नका उत्तर है-ये ऋषि, पुरोहित किसी एक भूखण्ड में सीमित रहनेवाले नहीं होते। विश्व को ही सुसभ्य करने का बीड़ा उठाने वाले ये निस्पृह विद्वान अपने राष्ट्र की सीमाओं को लाँघकर भी तो गए थे। ऋग्वेद में एक वर्णन आया है कि भारत जन (?) के कहने पर विश्वामित्र विपाशा और शुतुद्रि नदियों को पार कर विदेश जाने हेतु उन नदियों के किनारे पर खड़े हुए (ऋग्वेद ३/३३/११)।

नदी के पार होते समय मानों भावभीनी विदाई देते हुए वहाँ पर स्थित लोगों ने कहा- **'विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्'** ऋग्वेद. ३/३३/१२ (विश्वमित्रस्य ब्रह्मेदं भारतं जनं रक्षति) अर्थात् विश्वामित्रका ब्राह्मतेज इस भारत की जनता की रक्षा करेगा।

एक अन्य प्रसङ्ग आता है जहाँ कुछ भुज्यु जाति के लोगों को समुद्र में बड़े जहाज में जाते हुए बताया गया है जहाँ उनका जहाज किसी कारणवश अचानक डूबने लगा। किसी दूसरे जहाज के नाविक ने डूबते हुए उस जहाज को देखकर कहा हमें यन्त्रचालित नौका लेकर जाना होगा, नहीं तो वे सब डूब मरेंगे। वैसा ही हुआ, कुशल नाविक यन्त्रचालित नौका ले गए, डूबते हुए भुज्युओं का उद्धार किया, उनलोगों को उन्होंने उस पार (?) पहुँचाया और उनलोगों ने भी वहाँपर यज्ञानुष्ठान किए। यह कथा ऋग्वेद के दशम मण्डल के १४३ वें सूक्त में आती है।

ये साक्ष्य बता रहे हैं कि आर्य ऋषि भारत के बाहर जाकर वहाँ के लोगों को सभ्य बनाना चाहते थे- कृण्वन्तो विश्वमार्यम् (ऋग्वेद. ९/६३/५)। यहाँ यद्यपि मन्त्र में विश्व शब्द समस्त सृष्टि के लिए प्रयुक्त हुआ है, फिर भी परवर्ती आचार्यों ने सृष्टि के प्रतिनिधि के अर्थ में ही इस भूलोक को विश्व कहा है। सम् + सार=संसार, सम्यक तरीके से सृ गतिमान होने के कारण जिस तत्त्व को संसार कहा गया वही वैदिक भाषा का विश्व है और लोक में दोनों शब्दों को भूलोक के अर्थ में प्रयोग किया गया है, अतःहम भी उसी भाव को ग्रहण करते हैं।

ऐसे ऋषि कहीं भी जा सकते हैं और राष्ट्रियता की शिक्षा दे सकते हैं। इसलिए यहाँ पर **'एषां राष्ट्रम्'** पद से शासन की इकाई का अर्थ नहीं लगता

है। जिस राष्ट्र में वह राजा रहता हो उस राष्ट्र की सुरक्षा के क्षेत्र में उसके पास रहने वाले उपकरणों का वह खुलकर प्रयोग करे क्यों कि इस विषय में शासक ही सम्पन्न रहता है। इसीलिए इनका राष्ट्र ऐसा कहा गया। यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया इस राष्ट्र में मैं लोगों को शूरवीर बनाता हूँ (केवल राजा को नहीं)।

पुरोहित जो साधना करता है, वह अपने यजमान में प्रचण्ड क्षात्रतेज के सञ्चार हेतु ही करता है। **एषां क्षत्रम् अजरम् अस्तु** इस दृष्टि से ही वह आणविक शस्त्र जैसे मारक शस्त्रों का निर्माण भी करता है। **अहम् एषाम् आयुधा संस्यामि।** राष्ट्र हेतु अपने यजमान को वह कैसा बनाना चाहता है इसकी एक झलक ऐसी है-

संशितं मे इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्

संशितं क्षत्रम् अजरम् अस्तु जिष्णूर्येषामस्मि पुरोहित।। ३/१९/१

अर्थात् चिर विजीगिषा का भाव रखनेवाला मैं जिन राजाओं का पुरोहित हूँ, उन राजाओं का तेजस्वी क्षात्रतेज कभी भी क्षीण न हो।

पुरोहित यजमान की श्री वृद्धि चाहता है। परन्तु क्यों? इसलिए नहीं कि उसे दक्षिणा की बड़ी राशि मिले। वह तो यजमान, को राष्ट्र के श्रेष्ठ जनों के बीच बैठ कर वार्तालाप करने योग्य बनाना चाहता है। इस दृष्टि से की गई उसकी प्रार्थना की छटा देखिए-

५९. अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतां रयिम्।
इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम्।। अथर्व. ६/५४/२

अर्थ- अग्नीषोमौ (है अग्नि और सोम) अस्मै (इस यजमान को) क्षात्रम् (क्षात्रतेज और) रयिम् (ऐश्वर्य) धारयताम् (धारण कराओ)। इमं राष्ट्रस्य अभीवर्गे कृणुतम् (इन्हें राष्ट्र की श्रेष्ठ मण्डली में स्थित करो) उत्तरं युजे (मैं भी इन्हें उच्चता की ओर ले जाता हूँ)।

भावार्थ- प्रभु को प्रार्थना करने की यह कितनी विचित्र परिपाटी है कि एक यजमान की श्रीवृद्धि के लिए यहाँ प्रार्थना की गई है और वह प्रार्थना करने वाले पुरोहित सोकर माँगने की प्रवृत्ति नहीं रखता। वह तो निरन्तर सजग रहकर यजमान को ऊपर उठाना चाहता है और उस कार्य में प्रभु की सहायता की

याचना करता हुआ पाया जाता है।

यह ओजस्वी प्रार्थना देखकर पुलकित मन से हमने इस मन्त्र का शार्दूलविक्रीडित में यों अनुवाद किया-

"हे सर्वज्ञ विभो इन्हें अब करो सत्साहरी अर्चक।
ये हों सम्पद से महान जगमें हों क्षात्र के धारक।।
पाएँ श्रेष्ठ मनुष्य देशभर के बैठें उन्हीं में यह।
दे दो ये वर ले चलूँ अब इन्हें करने महामानव"।।

इस मन्त्रवाले सूक्त में केवल तीन मन्त्र हैं और सूक्त की पर्यालोचना में सातवलेकर जी कहते हैं-

"यह सूक्त स्पष्ट है। राष्ट्रिय उन्नति की प्रार्थना है। अपना श्रेष्ठों से सम्बन्ध जोड़ना और (यजमान) यज्ञमय जीवन बनाना यह मनुष्य का कर्तव्य यहाँ बताया है इसके अनन्तर परमेश्वर की प्रार्थना की जाय, तो वह निःसन्देह सफल होगी। अपना राज्य बढ़े, धन बढ़े, स्वाराज्य प्राप्त हो, शत्रु दूर हो जावें और सब प्रकार की उन्नति भी होवे। यह इस प्रार्थना का आशय है"।

पुरोहितों के ब्राह्मतेज की प्रचण्ड उर्जा और प्रजाजनों में समाहित क्षात्रतेज का समाहार हो तो राष्ट्र आज भी विश्वगुरु बनकर उभरेगा और जगत भी नतशिर होकर गाएगा-

"वन्दनीया पूजनीया मातृ शत शत वन्दना"

९०. विरोहितो अमृशद् विश्वरूप
समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च
दिवं रुढ्वा महता महिम्ना
सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन।।
अथर्व. १३/१/८

अर्थ- प्ररुहः रुहः च समाकुर्वाणः (प्ररोहणशील और रोहणशील राष्ट्रजनों को भली प्रकार प्रकट करते हुए) रोहितः विश्वरूपं वि-अमृशत् (रोहित देव ने उन सभी प्ररोहणशील और रोहणशील राष्ट्रजन के स्वरूप या स्वभाव को स्पर्श किया) महता महिम्ना (महान महिमा से) ते दिवं रुढ्वा (तुम्हारे दिवस को चढ़ाते हुए) राष्ट्रं पयसा घृतेन सम् अनक्तु (राष्ट्र को दूध और घृत से पूर्ण करे)

भावार्थ- यद्यपि प्रस्तुत मन्त्र में पुरोहित इच्छा व्यक्त करता है कि-ईश्वर राष्ट्र का कल्याण करे। तो भी जिन गुणों को पुरोहित ने गिनाए उन गुणों से सम्पन्न होकर एक शासक अपनी जनता का शासन करे। वह शासन करते समय प्ररोहणशील और रोहणशील सभी पर समान दृष्टि रखे **'प्ररुहः रुहः च समाकुर्वाणः'**। राजा वैभव और गौरव से युक्त होकर संसाधनों को राष्ट्र में बिखेरे ताकि राष्ट्र उन पदार्थों से पूर्णकाम हो सके। दिवस को चढ़ाने का तात्पर्य है कार्यशक्ति की वृद्धि करना।

राष्ट्रसेवा के पवित्र कार्य में अपने को स्वाहा करने की बुद्धिवाले वे पुरोहित जन अपने लिए कुछ भी न माँगते हुए राष्ट्र की श्री वृद्धि और राष्ट्रद्रोहियों का समूल उच्छेद करने हेतु ईश्वर से किस प्रकार प्रार्थना करते हैं इस पर एक दृष्टि डालना समीचीन रहेगा।

पुरोहित के द्वारा राष्ट्र हेतु ईशवन्दना

> ६१. ***उदेहि वाजिन् यो अप्स्वन्तरिदं***
> ***राष्ट्रं प्र-विश सुनृतावत्***
> ***यो रोहितो विश्वमिदं जजान***
> ***स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु।। अथर्व-१३/१/१***

अर्थ- वाजिन् यः अप्सु अन्तः, (अन्तरीक्ष के मध्यभाग में रहनेवाले सूर्यदेव) **उदेहि** (उदित हो)! **इदं सुनृतावत् राष्ट्रं प्र-विश** (इस सत्यवाणी युक्त राष्ट्र में प्रवेश करो) **यः रोहितः इदं विश्वं जजान** (जिस रोहित देव ने इस विश्व को जन्म दिया) **सः त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु** (हे राजन ! वह सूर्य तुम्हें राष्ट्रकल्याण के लिए भली प्रकार भरण-पोषण करे)।

भावार्थ- प्रस्तुत मन्त्र में पुरोहित अपने राष्ट्र को 'सुनृतावत्' सत्य वाणी से युक्त कहकर उसकी प्रशंसा कर रहा है। उसे गर्व है अपने राष्ट्र पर जो इस विश्व के पटल पर अकेले सत्याश्रित राष्ट्र बना और मानव संस्कृति का सन्देश विश्व में चहुँ ओर पहुँचाया।

ईश्वर ने इस विश्व को मानव कल्याण हेतु बनाया, परन्तु इस भूखण्ड को छोड़कर अन्यत्र भोगवादी विचारधाराएँ पनपीं। इसीलिए तो पुराणों में स्पष्टरूपेण

घोषणा की गई-

''यतो हि कर्मभूरेषा इतोऽन्याः भोगभूमयः''

अर्थात् हमारी यह भूमि कर्मभूमि है और इसे छोड़कर अन्य भूमियाँ भोगभूमियाँ कहलाती हैं।

इसलिए पुरोहित कहता है कि-इस भूमिको यहाँ के लोगों ने कर्मभू मानने के कारण तुम्हें यहां जाना ही चाहिए। अतः **'प्र-विश'** प्रवेश करो-ऐसा कहा गया। पुरोहित फिर राजा को समझा रहा है कि-वह उस सूर्य की उपासना जरूर करे जिन्होंने उसे राष्ट्र के प्रति अधिकतम सेवा करने का अवसर प्रदान किया।

यह मन्त्र **'राष्ट्राय सुभृतं विभर्तु'**-इस वाक्य खण्ड से संकेत दे रहा है कि राष्ट्र के लिए किए जाने वाले सारे कार्य ईश्वरीय होते हैं। इसीलिए तो राजा की रेख-देख करने एवं राष्ट्र की समृद्धि हेतु ईश्वरीय शक्ति का प्रदान, यह सब ईश्वर किया करे-ऐसा कहा गया। अपनी सत्ता को राष्ट्रसत्ता में विलीन कर राष्ट्रिय वैभव को ही अपना वैभव माननेवाले ध्येयनिष्ठ भक्त को सदैव कर्तव्यों का इस प्रकार बोध कराया-

(१) राष्ट्र की प्रगति हेतु देश की जनता को चरित्रवान और सत्यवाणी युक्त होना परम आवश्यक है।

(२) राष्ट्रोन्नति हेतु सदैव प्रभु की प्रार्थना हो।

(३) राष्ट्र को ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न बनाना ही हमारा ध्येय हो।

ब्रह्मणस्पति की प्रार्थना करते हुए पुरोहित राष्ट्र की रक्षा हेतु कहता है-

६२. *येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन्।*
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन।।
अथर्व- १९/२४/१

अर्थ- देवाः येन इमं सवितारं देवं परि-अधारयन् (जिसके जरिए देवों ने सविता देव को धारण किया) **ब्रह्मणस्पते! तेन इमं राष्ट्राय परिधत्तन** (हे ब्रह्मणस्पते! उसी तत्त्व से इन्हें अर्थात् यजमान को राष्ट्र हेतु रक्षा को प्रतिष्ठित करो)

भावार्थ- देवताओं ने किसी ईश्वरीय शक्ति के सहारे सविता के शक्ति को

आत्मसात् किया। वह अनिर्वचनीय शक्ति सर्वसमर्थ है। पुरोहित राष्ट्र की तेजस्विता के संरक्षण व सम्बर्धन हेतु उसी शक्ति की याचना कर रहा है। उसी तत्त्व को ब्रह्मणस्पति यजमान में आधान करे और 'राष्ट्राय' राष्ट्र हेतु उसे सबल बनाए-पुरोहित ऐसी ही कामना रखने वाला हुआ करता था। वरण मणि की स्तुति में पुरोहित कहता है-

६३.	*तांस्त्वं प्रच्छिन्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः* *य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः।।* *अथर्व- १०/३/१६*

अर्थ- **वरण** (हे वरण मणे) **ये अस्य पशुषु दिप्सन्ति** (जो इस यजमान के पशुसम्पदा को हरण करना चाहते हैं) **च** (और) **ये अस्य राष्ट्रदिप्सवः** (जो इस के 'राष्ट्र' को हरण करने वाले बनना चाहते हैं) **तान्** (उन्हें) **पुरा दिष्टात्** (प्रारब्ध के पहले) **पुरा आयुषः** (आयु से पहले) **त्वं प्रच्छिन्धि** (तुम नष्ट कर डालो)।

भावार्थ- इस मन्त्र को पढ़ते ही एक प्रश्न उदित होता है- यदि राष्ट्रत्व इतना महान हो, राष्ट्र भी सशक्त और समर्थ हो, सजग राष्ट्रजन हों तो इतने विशाल तत्त्व का हरण करने का तात्पर्य क्या है? क्या यहाँ पर राष्ट्र शब्द भौतिक भूखण्ड के नाते प्रयुक्त हुआ जिसे जब चाहे चोर, लूटेरे और गुण्डे उठाकर ले जाएँ?

यहाँ 'राष्ट्र' शब्द राष्ट्रत्व के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दुष्ट जन राजा के राष्ट्रत्व को हरण करना चाहते हैं ताकि उसकी सत्ता उससे छीनी जाय और सत्ताशून्य होने के पश्चात् उस राज्य की सम्पत्ति स्वतः ही असुरक्षित हो जाय। ऐसा होने से हम अपार धन-सम्पत्ति लूट सकते हैं इस भाव से प्रेरित होकर ही दुष्ट जन ऐसी अभिलाषावाले बनते हैं। यदि कोई किसी राज्य का शासनतन्त्र पाने की इच्छा रखता हो तो क्यों भला वह पहले लूट कर उसे सम्पत्ति शून्य बनाये और फिर उस निर्धन भूखण्ड पर श्मशान भूमि के राजा की तरह रहना चाहे?

ऐसे नीच एवं दुष्टों का विनाश ही सज्जनों को अभिप्रेत रहता है। इसीलिए इस प्रकार के दुष्टों को नष्ट करने हेतु पुरोहित वरणमणि से प्रार्थना

कर रहा है। ऐसे राष्ट्रद्रोही तत्त्वों के फणों को उठाने से पहले ही कुचल देना चाहिए-यह भाव इस मन्त्र में समाहित है।

शासनतन्त्र पुरोहितों की जान-माल की सुरक्षा करे

पुरोहित केवल सन्यासी हुआ करते थे ऐसा नहीं था, गृहस्थ भी इस दायित्व को निभाते हुए पाए जाते हैं। अत्रि और वशिष्ठ ऐसे ही पुरोहित रहे। राज्य उनकी सुरक्षा के लिए पर्याप्त व्यवस्था करे। इस आशय को स्पष्ट करने वाले नीचे के मन्त्र पढ़े जा सकते हैं-

> ***६४. उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति***
> ***परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो येन जीयते।। अथर्व. ५/१९/६***

अर्थ- य:राजा (जो राजा) उग्रः मन्यमानः (अपने को शूर और वीर मानता हुआ) ब्राह्मणं जिघत्सति (ब्राह्मण को ही खा डालना चाहता है) यत्र ब्राह्मणो जीयते (और जहाँ ब्राह्मण दुःखी होता है) तत् (वह) राष्ट्रम् (राष्ट्र) परासिच्यते (बह जाता है)।

इसी भाव को दर्शाता हुआ आगे का मन्त्र देखिए-

> ***६५. अष्टापदी चतुरक्षी चतुः श्रोत्रा चतुर्हनुः***
> ***द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रम् अवधूनुते ब्रह्मज्यस्य।।***
> ***अथर्व. ५/१९/७***

अर्थ- ब्रह्मज्यस्य (ब्राह्मतेजधारियों की) सा (वह विपत्ति) अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः द्व्यास्या दिजिहा भूत्वा (आठ पैरों वाली, चार आखोंवाली, चार कानोंवाली,चार ठोड़ियोंवाली, दो मुखोंवाली और दो जीभोंवाली बनकर) राष्ट्रम् (राष्ट्र को) अवधूनुते (हिलाकर क्षतिग्रस्त कर डालती है)। साथ ही-

> ***६६. तद् वै राष्ट्रमास्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्***
> ***ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना।। अथर्व. ५/१९/८***

अर्थ- उदकम् आस्रवति (पानी का प्रवाह जिसमें छिद्र बनाकर रिसता है) नावं भिन्नाम् इव (वैसी नौका के डूबने के समान) ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति (आततायी

जहाँ ब्राह्मण को मारते हैं) दुच्छुना तत् राष्ट्रं हन्ति (विपत्ति उस राष्ट्रको मार डालती है)।

वैदिक साहित्य में गौ को धन के रूप में स्वीकारा गया है। याने अधिक गायवाले को ही अधिक धनवान समझा जाता था। इस दृष्टि से कहा गया- ब्राह्मण की गौ या गोधन हरण करना राष्ट्र के लिए हानिकारक है।

६७. *विषमेतत् देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत्*
न ब्राह्मणस्यं गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन।।
अथर्व. ५/१९/१०

अर्थ- राजा वरुणः अब्रवीत् (राजा वरुण ने कहा है कि) **एतत् देवकृतं विषम्** (इस ब्राह्मण सम्पत्ति को देवताओं ने विष बना दिया है) (इसलिए) **ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा** (ब्राह्मण की गाय को मारकर या उनके धनका अपहरण कर) **राष्ट्रे** (राष्ट्र में) **कश्चन न जागार** (कोई भी जागृत नहीं रहा है)। इसका उदाहरण भी देखें-

''ये सहस्रमराजन्नासन् दशक्षता उत।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन्''।। अथर्व. ५/१८/१०

अर्थात् हजारों वर्षों तक वीतहव्य वंश के हजारों ने शासन किया। अन्त में ब्राह्मण की गौ (सम्पत्ति) छीनने के कारण पराभव का मूँह देखना पड़ा।

भावार्थ- इन मन्त्रों का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि-ब्राह्मणों ने इन मन्त्रों को अपनी सुविधा के लिए बनाए हों। एक विद्वान व दूरदृष्टिसम्पन्न ब्राह्मण को पुरोहित कहा जाता था। ब्राह्मणों का यह वर्ग सतत जागरूक रहकर राष्ट्र हेतु कार्य करता था।

जिन्होंने राष्ट्र चिन्तन से प्रेरित होकर अनेकों यज्ञ कराए, आसुरी प्रवृत्ति को निर्मूल करने को अपनी हड्डियाँ भी दे डालीं, जिन पुरोहितों ने अपने लिए कुछ भी नहीं चाहा, जिन्होंने आजीवन गुरुकुलों में रहकर छात्रों के द्वारा लाए गए भिक्षान्न में ही सन्तुष्ट रहकर अध्यापना की, जंगलों में आश्रम बनाकर विना राजकीय सहायता के ही प्रयोगशालाएँ खोलीं, आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान), रसायन विज्ञान के अनुसन्धान किए, शस्त्रास्त्रों के निर्माण हेतु गवेषणाएँ चलाईं, परोपकार ही पूण्य का दूसरा नाम है कहनेवाले उन क्रान्तदर्शियों को

लालची का ठप्पा लगाना भारतीय राष्ट्रियता का घोर अपमान है।

ये मन्त्र तो मानव जाति के कल्याण हेतु उन उग्रतपा मनीषियों के वर्ग को न सताते हुए उन्हें सम्मान करने के उपदेश हेतु दिए हुए हैं। इस सकारात्मक दृष्टि से इन मन्त्रों को पढ़ने की आवश्यकता है।

और हाँ, ब्राह्मण का वर्ग जो अपनेको पुरोहित समझता है, इस भ्रम में न फँसे कि-वेदों ने हमें पर्याप्त मात्रा में अधिकार प्रदान किए। क्यों कि प्रथमतःतो वैदिक वाङ्मय जिन्हें पुरोहित कहते हैं वैसे पुरोहित आज दिखाई ही नहीं देते। जिनके हृदय में मातृभूमि की वेदना में हाहाकार पैदा न हो, जनजागरण का शंखनाद करने की संकल्पना तक न हो, जो तपस्या और साधना से दूर रहते हों, जो राष्ट्रभाव से सराबोर होकर क्षात्रतेज को उद्दीप्त करने की इच्छा भी न रखते हों, त्याग की भावना से दूर रहकर जो केवल स्वार्थ साधना की आँधी में वसुधा के कल्याण को भूल गए हों, जो केवल दक्षिणा पाने की आशा से कर्मकाण्डों का सम्पादन कराता हो वैसा व्यक्ति पुरोहित कहलाने का अधिकारी नहीं होता, वह तो कर्मकाण्डी कहलाता है। ब्राह्मण वर्ग से आज शंकराचार्यों रामानुजाचार्यों, चाणक्यों, रामदासों व वशिष्ठों जैसी विभूतियाँ पैदा हों यही आज के युग का आह्वान है।

ब्राह्मण वर्ग अधिकारों की होड़ में दौड़ लगाने के लिए नहीं बना, वह तो केवल कर्तव्य की भाषा को जानने के लिए बना। इस प्रकार के ब्राह्मणों की सम्पत्ति हर ली जाती है तभी राष्ट्र में जब भी खलबली मचती है। वास्तव में इन मन्त्रों में आए हुए तथ्य इसी परिप्रेक्ष में हैं यह समझना चाहिए।

वेदों के ये मन्त्र अधिकारों की माँग करने के प्रयोग में कभी भी न लाए जायँ, यदि कभी ऐसा हुआ तो हम ही अवैदिक बन जाएँगे। भगवान करे ऐसा दुर्भाग्य पूर्ण दिवस हमारी भारत भू में कभी भी न आए।

वैदिक दृष्टि से योग्य पुरोहित बनने की ललक हृदय में जाग उठे और यजमानों को हम यों आशीर्वाद दिया करें-

६८. दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह। प्रजाञ्च रोहामृतञ्च रोह रोहितेन तन्वं संपृशस्व।। अथर्व-१३/१/३४

अर्थ- **दिवं च रोह** (हे यजमान, तुम देवलोक की ओर विस्तारित होओ) **पृथिवीं च रोह** (पृथिवी में भी व्यापक बनो) **द्रविणं च रोह** (धन-सम्पदा व विभूतियों को भी अधीन बनाओ) **प्रजां च रोह** (राष्ट्रजन के हृदय सम्राट बनो) **अमृतञ्च रोह** (अमरता लाभ करो) **रोहितेन तन्वं संस्पृशस्व** (सूर्य को शरीर से स्पर्श कराओ)।

भावार्थ- यह यजमान को दिया गया पुरोहित का आशीर्वाद है। अर्थ इसमें स्पष्ट ही है। इसकी मनोरम छटा को हमने इस तरह पद्य में पिरोने का प्रयास किया-

दिव्य देवलोक में चढ़ो मनुष्य वेग से।
छान लो धरा पुनः बढ़े चलो सुराष्ट्र से।।
ला विभूति सर्ववित्त में प्रभुत्व तुम करो।
प्रजा समग्र राष्ट्र के रहें सदानुकूल हो।।
सर्वदा बढ़े चलो सुदिव्यता भरे चलो।
अमृतत्व सिद्धि हेतु वीर हे बढ़े चलो।।
तेजपुञ्ज हो उठो मनुष्य और भी बढ़ो।
देह छू सके प्रचण्ड दिव्य सूर्यदेव को।।

इस प्रकार की भावनाओं को अपने हृदय में सँजोकर हम आगे बढ़ें और वैदिक ऋषि के स्वर में स्वर मिलाते हुए गाएँ-

"आओ हम सब मिलकर गाएँ जगजननी के गान"

ऐसा ही गीत वैदिक ऋषि के श्रीमुख से सुनें तो जरा !

> ***६९. उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावत्, दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम्***
> ***पांक्तं छन्दं पुरुषो बभूव, विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह संभवेम।।***
> ***अथर्व-१२/३/१०***

अर्थ- **प्रजया उत्तरावत् राष्ट्रम् उत्तरं कृणवत्** (प्रजाओं की श्रेष्ठता राष्ट्र को और भी श्रेष्ठ बनाए) **नः उदीचीं दिशां अग्रं कृणवत्** (हमारी श्रेष्ठत्व की ओर जाने वाली दिशा को अग्रसर बनाएँ) **पांक्तं छन्दं पुरुषो बभूव** (पाक्तं छन्द अब पुरुषार्थ से युक्त हो चुके) **विश्वैः विश्वाङ्गैः सह संभवेम** (हम अपने सभी अंगों सहित पृथिवी में बने रहें)।

भावार्थ- राष्ट्र के पुरूषार्थ को जगाने कवि पांक्त छन्द में वीररस की कविताएँ लिख चुके, ऐसी घोषणा करता हुआ वैदिक ऋषि हनुमान को जाम्बवान के तरह प्रेरणा देता हुआ कहता है 'इस देश की सन्तानों, तुम श्रेष्ठ हो, अपने को पहचानो और इस राष्ट्र को श्रेष्ठत्व और वैभव की ओर ले चलो'

'विश्वैः विश्वाङ्गैः सह सम्भवेम' (अर्थात् हम अपने अंगों सहित पृथिवी में बने रहें) कहने का महान तात्पर्य है। ऋषि का आशय है कि-मानव कल्याण के लिए ईश्वर ने हमें बनाया और यह राष्ट्र प्रदान किया। हमने भी व्यक्ति समाज और परमात्मा में आत्मा, मन, शरीर और बुद्धि की खोज की। इसीसे भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक दर्शन अस्तित्व में आए। वास्तव में यहाँ की संस्कृति ही विश्व को शान्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। इस सत्य को हमारे पूर्वजों ने पहले ही देखा और उन तत्त्वों को ही हमारे समाज जीवन के अंग के नाते स्वीकारा। वह इन तत्त्वों को मानव कल्याण हेतु धराधाम में ही बिखेरना चाहता है, इसीलिए वह कहता है, ''हम अपने अंगों सहित पृथिवी में बने रहें'' इस सुन्दर गीत का भी हमारा पद्यानुवाद सुनिए-

श्रेष्ठ व्यक्ति राष्ट्र को करें सुदिव्य और भी।
श्रेष्ठ मार्ग से चलें करें महान कार्य भी।।
पांक्त छन्द हो चुके प्रचण्ड शक्ति राष्ट्र के।
पूर्ण अंग से बढ़ें बने रहें स्वदेश के।।

इसी कामना से प्रभु की प्रार्थना करते हुए हम भारत राष्ट्र के लोग गौरवशाली इतिहास के इस देश को जगद्‌गुरु के आसन पर आसीन कराने की शक्ति प्रदान करने हेतु प्रभु को पुष्पाञ्जलि अर्पण करें।।

राष्ट्राय स्वाहा राष्ट्राय इदं न मम।।

अकारादिक्रमेण राष्ट्रशब्द-समाहितानां वेदमन्त्राणां सूची

क्र.	मन्त्राणि	मंन्त्र-संख्या	ऋग्वेद	यजुर्वेद	अथर्ववेद
१	अच्छा न इन्द्रम्	९			६/१९/२
२	अपस्त्वं धुक्षे	४०			१०/१०/८
३	अभिवर्तेन हविषा	२८	१०/१७४/१		
४	अभिवर्धतां पयसाभि	४२			६/७८/२
५	अभीवर्तेन मणिना	२९			१/२९/१
६	अभीवर्तो अभिभवः	३१			१/२९/४
७	अभीवस्वः प्रजिहीते	५०			२०/१२७/९
८	अर्थेत स्थ	१७		१०/३	
९	अष्टापदी चतुरक्षी	६५			५/१९/७
१०	असपत्नः सपत्नहा	२१	१०/१७४/५		
११	अस्मै क्षत्रमग्नीषोमौ	५९			६/५४/२
१२	आ ते राष्ट्रमिह	४८			१३/१/५
१३	आ त्वगन् राष्ट्रं	५१			३/४/१
१४	आ त्वाहार्षमन्तरेधि	५२,५३	१०/१७३/१		६/८७/१
१५	आ ब्रह्मन् ब्रह्मणो	२५			२२/२२
१६	आ यातु मित्र ऋतुभिः	१४			३/८/१
१७	इमं बिभर्मि	३०			१०/३/१२
१८	इहैवैधि मापच्योष्ठा	१२	१०/१७३/२		६/८७/२
१९	उग्रो राजा मन्यमानो	६४			५/१९/६
२०	उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावत्	६९			१२/३/१०
२१	उदेहि वाजिन्	६१			१३/१/१
२२	ऋतं सत्यं तपो	६			११/७/१७
२३	ऋतस्य पन्थाम्	१९			८/९/१३
२४	ऋतेन राजन्	१०	१०/१२४/४		

क्र.	मन्त्राणि	मंन्त्र-संख्या	ऋग्वेद	यजुर्वेद	अथर्ववेद
२५	एषामहमायुधं	५८			३/१९/५
२६	कतरत् त आहराणि	२६			२०/१२७/९
२७	तद् वै राष्ट्रमास्रवति	६६			५/१९/८
२८	तांस्त्वं प्रच्छिन्द्धि	६७			१०/३/१६
२९	त्वां विशो वृणतां	४४			३/४/२
३०	त्वामाहुर्देव वर्म त्वां	११			१०/३/४
३१	दिवं च रोह	६८			१३/१/३४
३२	ध्रुवं ते राजा वरुणो	१३	१०/१७३/५		६/८८/२
३३	न विकर्णः पृथुशिराः	३४			५/१७/१३
३४	नास्मै पृश्निम्	३८			५/१७/१७
३५	नास्य क्षत्ता निष्कग्रीव	३५			५/१७/१४
३६	नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी	३७			५/१७/१६
३७	नास्य जाया शतवाही	३३			५/१७/१२
३८	नास्य श्वेतो कृष्णकर्णः	३६			५/१७/१५
३९	परि त्वा धात् सविता	८			१३/१/२०
४०	पृष्ठीर्मे राष्ट्रम्	३		२०/८	
४१	प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि	४		२०/१०	
४२	प्रान्त्यान्त्सपत्नान्	२४			७/३५/१
४३	ब्रह्मगवी पच्यमाना	३९			५/१९/४
४४	ब्रह्म च क्षत्रं च	४१			१२/६/२
४५	ब्रह्मचर्येण तपसा	४६			११/५/१७
४६	बह्वी समा अकरम्	५६	१०/१२४/३		
४७	भद्रमिच्छन्त ऋषयः	१			१९/४१/१
४८	मम द्विता राष्ट्रं	५	४/४२/१		
४९	मयि क्षत्रं पर्णमणे	२३			३/५/२
५०	यामाहुस्तारकैषा	३२			५/१७/४
५१	यार्णवेऽधि	२			१२/१/८

क्र.	मन्त्राणि	मन्त्र-संख्या	ऋग्वेद	यजुर्वेद	अथर्ववेद
५२	यास्ते रुहः प्ररुहो	२०			१३/१/९
५३	युवो राष्ट्रं	२७	७/८४/२		
५४	ये देवा राष्ट्रभृतो	१५			१३/१/३५
५५	येन देवं सवितारं	६१			१९/२४/१
५६	राजा राष्ट्राणां	४५	७/३४/११		
५७	रुहो रुरोह	४९			१३/१/४
५८	वाजस्य प्रसवः	५५		९/२३	
५९	विरोहितो अमृशत्	६०			१३/१/८
६०	विषमेतत् देवकृतं	६७			५/१९/१०
६१	वृष्ण उर्मिरसि	१६		१०/२	
६२	शकधूमं नक्षत्राणि	४३			६/१२८/१
६३	श्रेयांसमेनमात्मनो	५४			१५/१०/२
६४	सपत्न क्षयणो	२२			१/२९/६
६५	समहमेषां राष्ट्रं	५७			३/१९/२
६६	समृद्धि रोज आकूतिः	७			११/७/१८
६७	सूर्यत्वचसः स्थ	१८		१०/४	
६८	हस्तेनैव ग्राह्या	४७	१०/१०९/३		५/१७/३

३५. स्वामी सरस्वती, दयानन्द- सत्यार्थ प्रकाश- आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली- १९८१।

(लेखों के संकलन)

३६. गो सेवा अंक, कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर।

३७. नारी अंक, कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर, विक्रमाब्द- २०५५।

३८. हिन्दू विवाह का पवित्र स्वरूप और महत्त्व, गीताप्रेस, गोरखपुर- १९३५।

३९. हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर- १९५०।

४०. Indian Cultural Heritage Vol-I (2001) Vol-II (2001), R.K.Mission Publication, Calcutta.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(वैदिक ग्रन्थमाला)

१. अथर्ववेद

(शौनक शाखा)- सायण भाष्य, सनातन धर्म यन्त्रालय, मुरादावाद, विक्रमाब्द- १९८६।

२. ईशादि नौ उपनिषद- सम्पादक हरिकृष्णदास गोयङ्का, गीताप्रेस, गोरखपुर, विक्रमाब्द- २०४७।

३. ऋग्वेद-

(क) सायण भाष्य, मुम्बई, १८१०, सम्पादन-पुणे।

(ख) ग्रीफिथ भाष्य **The Hymns of the Rgveda**
मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७६।

(ग) दयानन्द भाष्य- सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा प्रकाशन

४. ऐतरेय ब्राह्मणम्- सायण भाष्य, सम्पादक- सुधाकर मालवीय,चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

५. छान्दोग्य उपनिषद- गीताप्रेस, गोरखपुर, विक्रमाब्द- २०४५।

६. बृहदारण्यकोपनिषद- अनुवाद- अशोक कौशिक, लोकप्रिय सीरीज दिल्ली- १९८६।

७. शुक्ल यजुर्वेद-

(क) उवट- महीधर भाष्य, सम्पादक- पाण्डुरंग श्रेष्ठी, मुम्बई- १९२९।

(ख) ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत भाष्य वेंकटेश मुद्रणालय, मुम्बई- १९६९।

(ग) दयानन्द भाष्य, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा विक्रमाब्द-१९४७।

८. श्वेताश्वतर उपनिषद- उपनिषदाङ्क कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर से।

(लौकिक संस्कृत के मूल ग्रन्थ)

९. अर्थशास्त्र- चाणक्य, सम्पादना- आर शर्मा, शास्त्री, मैसूर, १९१९।
१०. कुमारसम्भवम्- कालिदास, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, १९८३।
११. नीतिशतकम्- भतृहरिकृत, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
१२. महाभारतम्- महर्षि व्यास- गीताप्रेस, गोरखपुर, १९८२।
१३. मनु-स्मृति- निर्णय सागर मुद्रणालय, दिल्ली, १९४६।।
१४. याज्ञवल्क्य स्मृति
१५. रामायणम्- महर्षि वाल्मीकि- रामाभिनन्दिनी भाषाटीका पण्डित पुस्तकालय, काशी, १९५१।
१६. विष्णुपुराणम्- वेङ्कटेश्वर प्रेस, मुम्बई- १९१०।
१७. श्रीमद्भगवद्गीता- रामसुखदास भाष्य, गीताप्रेस, विक्रमाब्द-२०५३।
१८. श्रीमद्भागवत महापुराण
(क) हिन्दी व्याख्या सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर विक्रमाब्द- २०५०।
(ख) असमीया संस्करण, श्री मन्त शंकरदेव कृत
१९. दुर्गा सप्तशती

(परोक्ष स्रोत)

२०. Acharya Shiva- **Nation, Nationalism and Social Structure in Ancient India,** Decent Books Publication, 2005.
२१. Kohn, Hans- **Idea of Nationalism,** London 1960.
२२. उपाध्याय, पण्डित दीनदयाल, राष्ट्र दर्शन की दिशा, लोकहित प्रकाशन, लखंलऊ- १९७९
२३. गुरूदत्त, हमारी सांस्कृत्रिक धरोहर, दिल्ली, १९९३।
२४. गोलवलकर, श्री गुरुजो- 'राष्ट्र' सम्पादन- भानु प्रताप शुक्ल, नई दिल्ली।
२५. Toynbee, Arnold J., **Nationality and the War.** London 1915.

२६. भिड़े, नरहरि नारायण- **किं राष्ट्रं कश्च राष्ट्रियः**, बाबासाहेब आप्टे स्मारक समिति, नागपुर- १९९२।
२७. रटाटे, विनायक रामचन्द्र- **अथर्ववेदे राजनीतिः**, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय प्रकाशन, १९८९।
२८. वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद- **वैदिक राजनीतिशास्त्र** विहार ग्रन्थ अकादेमी- १९७५।
२९. विवेकानन्द, स्वामी, **विवेकानन्द साहित्य**, खण्ड १-(१९८०), २- (१९८१) ३-(१९८४), ४-(१९८४), ५-(१९८५), ६-(१९८५) ७-(१९८५)।
३०. शर्मा, थानेश्वर- **वैदिक साहित्यर रूपरेखा**, प्रथम प्रकाशन, गुवाहाटी, १९९८।
३१. शर्मा, पं. रघुनन्दन- **वैदिक सम्पत्ति**, दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली- ५, १९८३।
३२. Hays Curlton J.H.,- Essays on Nationalism, New York, Macmillan, 1926.
३३. सातवलेकर, श्री पाद दामोदर- अथर्ववेद- मातृभूमि और स्वराज्यशासन, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९६७।
३४. स्वामी, महाराज करपात्रीजी- मार्क्सवाद और रामराज्य गीताप्रेस, गोरखपुर- विक्रमाब्द- २०४६।
३५. स्वामी सरस्वती, दयानन्द- सत्यार्थ प्रकाश- आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली- १९८१।

(लेखों के संकलन)

३६. गो सेवा अंक, कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर।
३७. नारी अंक, कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर, विक्रमाब्द- २०५५।
३८. हिन्दू विवाह का पवित्र स्वरूप और महत्व, गीताप्रेस, गोरखपुर- १९३५।
३९. हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर- १९५०।
४०. Indian Cultural Heritage Vol-I (2001) Vol-II (2001), R.K.Mission Publication, Calcutta.

लेखक की प्रकाशित पुस्तकें

१. श्रद्धाञ्जलि (शोककाव्य) -१९८3 (नेपालीभाषा में)
प्रकाशिका-पुण्यशीला देवी।

२. मुटुका आगाका केही झिल्काहरु-१९८५ (नेपाली कविता संकलन) भटराई वन्धु प्रकाशन, वाराणसी।

३. आजकी दिग्भ्रात्त समाजशास्त्र-१९९१ (नेपाली)
प्रकाशिका- श्रीमती गीता देवी।

४. संस्कृत-मार्गदर्शिनी (संस्कृत)-२००३
प्रकाशक -प्रकाशन भारती,
शिशु शिक्षा समिति, असम, गुवाहाटी

५. Nation, Nationalism and Social structure in Ancient India (A survey through Vedic Literature) 2005,
Decent Books Publication, New Delhi.

६. राष्ट्रशब्द समाहित वेदमन्त्रों के आधार पर
वेदों में राष्ट्रदर्शन (हिन्दी)-२००५,
प्रकाशक-संस्कृत प्रसारिणी सभा, गमिरि

७. English structure for learners (P. I)
Prakashan Bharati Publication, 2005

प्रकाशोन्मुख :

१. लज्जाराम तोमर द्वारा लिखित भारतीय शिक्षा के मूलतत्त्व का असमीया अनुवाद। (ভাৰতীয় শিক্ষাৰ মূল তত্ত্ব)
प्रकाशक- विद्याभारती, असम।